कालजयी कवियों ने काल की गति को नये अंदाज में देखा है, इस अंदाज की रोशनी में भाव-भाषा-बिम्ब-शब्द- चित्र-चिह्न को रोशन करना लाजिमी है। इस दिशा में 'काव्य-सृजन के विजय-चिह्न' नामक यह पुस्तक एक अत्यन्त छोटा क्या अदना-सा प्रयास है। इस प्रयास को आलोचना पद्धति के अंतर्गत एक रूपरेखा के रूप में देखना अनुचित नहीं होगा, क्योंकि युगीन चेतना को इसके जरिये उद्घाटित करने के सिलसिले में आगे बढ़ने की यह एक चेष्टा है, जहां अनुभूति, संवेदना, अनुभव, भावना को स्थान देते हुए युग-संघर्ष का नया अंदाज प्रस्तुत किया गया है।

यह पुस्तक रवीन्द्र, फ़ैज़ और नागार्जुन के साथ-साथ छायावाद की रोशनी को लेकर हिन्दी की विकास गति को नया आयाम देने की वकालत तो नहीं करती है, लेकिन उनके महत्व को रेखांकित करते हुए काव्य-सृजन के विजय-चिह्न के रूप में उन्हें स्थापित करने की बानगी प्रस्तुत करती है।

इस पुस्तक को इस रूप में प्रस्तुत करने के लिए जिन साथियों ने सहयोग किया है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना एक तरह से धृष्टता होगी। आलोचना-दृष्टि को आगे बढ़ाने में इसकी अहमियत पाठकों के हाथ में है। सारी खूबियों और खामियों के साथ यह पुस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत है। आपकी आलोचनात्मक टिप्पणी ही इस पुस्तक की जान है।

राम आह्लाद चौधरी

9 जनवरी, 2013
कोलकाता-75

रवीन्द्र की अनुभूति

रबिन्द्रनाथ,
विश्व के सतत प्रवाह के अनन्त साथ-साथ,
आत्म-गीत से बहो,
मनुष्य-गीत से रहो
अनन्त-सांझ-रात-प्रात
विश्व-मातृ-उदर-आज
नवल-ज्योति-बाल की प्रसूति-वेदना सुदीर्घ
काल-रेख के समान
सूक्ष्म-तीव्र
आज ओ रबिन्द्रनाथ
क्रुद्ध आसमान में हिले विशुद्ध आत्म-गीत साम्य-गीत,
हिले प्राण, हिले प्रीत,
हिले मनोज्ञ राग-मूर्ति साथ-साथ

—मुक्तिबोध

रवीन्द्रनाथ की महानता किसी से छिपी हुई नहीं है। पूरी दुनिया में रवीन्द्रनाथ जैसा कोई दूसरा साहित्यकार कम दिखता है। उनकी महानता के संबंध में लोगों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं। किसी ने रवीन्द्रनाथ को उनकी कविताओं के कारण महान माना है। किसी ने उनके गीत के कारण उन्हें अद्वितीय कहा है। किसी को उनके नाटक पसंद हैं, तो किसी ने उनके कथा-साहित्य में मानव सभ्यता के छिपे बीज को देखा है। चित्रकारी के लिए लोगों ने उन्हें याद किया

Scanned with CamScanner

है। इसके अतिरिक्त यदि विषय के आधार पर देखने की कोशिश करें, तो शायद ही कोई ऐसा मुद्दा हो, जिसकी चर्चा उनके साहित्य में न हुई हो। कहा ही जाता है कि रवीन्द्र-चर्चा का कोई विकल्प नहीं है।

आखिर कवि रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में इतनी गंभीरता कहां से आयी? उनकी मानसिक बुनावट के केन्द्र में गरीब किसान-मजदूर हैं? उनके मानस में फासीवाद के विरुद्ध व्यापक घृणा विद्यमान है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के वीभत्स स्वरूप को उन्होंने चित्रित किया है। मानवता के पक्ष में रवीन्द्रनाथ ने जितना और जिस रूप में लिखा, वैसा किसी दूसरे लेखक ने नहीं लिखा। कुछ साहित्यकारों ने इस बारे में अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा है कि उन्हें कहां से इतनी ताकत मिली?

रवीन्द्रनाथ और उनकी रचनाओं पर मानवतावादी आलोचकों ने लिखा है। उनकी रचनाएं या उनकी आलोचना पद्धति की एक सीमा है। उस सीमा की जितनी कम चर्चा की जाय, आज के माहौल में उतना अच्छा है। सवाल यह है कि रवीन्द्रनाथ की रचनाओं को सामने रखते हुए वर्तमान समाज में राजनीति-अर्थनीति-शिक्षा-संस्कृति सहित अन्य विषयों को दुरुस्त करने में सफलता और सार्थकता हासिल हो सकती है या नहीं। यदि सिर्फ एक बिन्दु पर विचार किया जाय तो, स्पष्ट होगा कि रवीन्द्रनाथ ने डूबते जहाज को बचाने का काम किया। कहने का अभिप्राय यही है, जिस काम को रवीन्द्रनाथ ने अपनी दूर-दृष्टि से संपन्न करने का प्रयास किया, उसका कोई विकल्प नहीं। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को उन्होंने सम्प्रसारित होते देखा तथा फासीवाद को ढलान पर जाते हुए देखा। युगांतकारी घटना नवंबर क्रांति की सार्थकता उनकी रचनाओं में विद्यमान है। दो-दो महाविश्वयुद्ध के कारण मानव-सभ्यता को बिलखते हुए किसी ने देखा तो वह कोई और नहीं रवीन्द्रनाथ ही हैं। उनकी रचनाओं के अंत:स्तल में उतरने के बाद पता चलता है कि इस पूंजीवादी व्यवस्था के कारण इतनी बड़ी क्षति हुई। उस नुकसान की भरपाई असंभव है। इसलिए मानव सभ्यता को विवेकवान बनाने के लिए रवीन्द्रनाथ ने सामाजिक जागरुकता पर जोर दिया। यह जागरुकता राजनीतिक

दृष्टि के बिना आगे नहीं बढ़ पाती। विकलांग जागरुकता को दुरुस्त करने की क्षमता यदि किसी में हैं, तो वह वर्गीय अवधारणा है। इस अवधारणा का आधार राजनीतिक विचार है। शचीन्द्रनाथ सेन ने ' दि पालिटिकल फिलासफी आफ रवीन्द्रनाथ' में रवीन्द्रनाथ के राजनीतिक विचार पर एक तरह से जो निष्कर्ष निकाला है, वह अद्वितीय है, जिसे यहां प्रस्तुत करना अनुचित नहीं होगा- ''आज अपने देश में हमने चरखे का चिह्न बनाया हुआ झंडा फहराया है। यह संकीर्ण जड़शक्ति का झंडा है, अविकसित यंत्रशक्ति का झंडा है, व्यवसाय की दुर्बलता नहीं है। इसमें चित्तशक्ति का आह्वान कहीं नहीं है। समस्त देश को मुक्ति-पथ पर चलने का आमंत्रण किसी वाह्य प्रक्रिया की विवेकहीन पुनरावृत्ति करने का आमंत्रण नहीं हो सकता। उसके लिए आवश्यक है पूर्ण मनुष्यत्व का उद्बोधन। यह उद्बोधन क्या चरखा चलाने से होगा? चिंताहीन, मूढ़, ब्राह्म अनुष्ठान को पारलौकिक सिद्धि लाभ का उपाय मानकर ही क्या हमने आज तक अपने मन और कर्म को जड़त्व के वेष्टन में बंद नहीं किया है? क्या यही देश की सबसे बड़ी दुर्गति का कारण नहीं रहा है? आज क्या आकाश में झंडा उड़ाकर हम यह कहेंगे, 'हम बुद्धि नहीं चाहते, विद्या नहीं चाहते, हमें प्रीति, पौरुष, आंतरिक मुक्ति की आवश्यकता नहीं, हमारी सबसे बड़ी जरूरत यही है कि आंखें बंद करके, मन को अवरुद्ध करके, हाथ घुमाते रहें- कई हजार वर्ष पहले जिस तरह घुमाते जाते थे ठीक उसी तरह?' क्या स्वरूप-साधना की यात्रा का यही राजपथ है? इस तरह की बात कहना क्या मनुष्य का अपमान नहीं है?''[1]

रवीन्द्रनाथ ने अपने विचार के केन्द्र में हमेशा मानव को रखा, क्योंकि मानव-सभ्यता की अग्रगति तभी संभव है, जब समाज में विवेक को समुचित रूप से स्थान दिया जाय तथा विवेक को स्थापित किया जाय। विवेक के माध्यम से तर्क स्थापित होता है, जिसका रास्ता प्रगति की ओर जाता है। दूसरी ओर जहां विवेक नहीं है, वहां तर्क भी नहीं होता। ऐसी स्थिति में सिर्फ वहां प्रतिक्रिया होती है, प्रतिक्रिया समाज के लिए घातक होती है। यह समाज में नफरत की दीवार तैयार करती है, इतिहास के चक्के को पीछे की ओर घुमाती है। यही वह जगह है, जहां

Scanned with CamScanner

एक विवेकवान लेखक सामने आकर इतिहास की गति तथा उसकी चालिका शक्ति के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करते हुए एक विकल्प को स्थापित करता है, जैसा कि रवीन्द्रनाथ ने अपनी रचनाओं के जरिये समाज विकास के समक्ष उपस्थित सारी चुनौतियों का मुकाबला करते हुए समाज को विकास-पथ पर अग्रसर किया। इसलिए कि हमेशा रवीन्द्रनाथ जनता के सुख-दुःख के बीच रहे। जनता के प्रति अति लगाव ने ही उनको इतना महान बना दिया। उनकी महानता के संबंध में बाबा नागार्जुन ने अपनी कविता 'रवि ठाकुर'! में बिल्कुल सही कहा है- ''तुंगभद्र! महानाम!-/ तुम्हारा यश-सागर असीम लहरा रहा/ अग-जग में भू पर!! तुम्हारी गुरुता का ध्वज-पट/ फहरा रहा हिमगिरी के ऊपर!!''[2]

रवीन्द्रनाथ ने पराधीन भारत में आजादी के गीत को प्रमुखता दी। उपनिवेशवाद के विरुद्ध उन्होंने जो संघर्ष शुरू किया, उसका उदाहरण कहीं दूसरी जगह मिलना मुश्किल है। एक अभिजात परिवार के घटाटोप के बीच गरीब किसान और उत्पीड़ित ग्रामीण व्यवस्था को जिस तरह से काव्य जगत में स्थान दिया और पूरे विश्व का ध्यान उस ओर खींचते हुए उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि भारत पराधीनता की जंजीर को काट कर बाहर निकलेगा। इस जंजीर को काटने के लिए चरखा चलाने की जरूरत नहीं है। गांधीवाद पर उन्हें पूरी तरह से संशय था। यही कारण है कि गांधी के लाख चाहने के बावजूद रवीन्द्रनाथ ने चरखा नहीं चलाया, उल्टे रवीन्द्रनाथ ने चरखा चलाने वालों की स्थिति का सही जायजा लिया। भाववाद के पुरोधा या प्रवक्ता रवीन्द्रनाथ के संबंध में चाहे जितनी विसंगतियों को सघन करें, सच तो यही है कि समाज में वास्तविक यथार्थ को स्थापित करने का काम रवीन्द्रनाथ ने किया, जो आज भी अंधेरे को चीरने का साहस देता है। यही साहस इस देश की जनता को युगीन सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य का विवेचन करने की क्षमता प्रदान करता है।

रवीन्द्रनाथ का चिंतन मौलिक है। उनकी कविताओं के अवयवों का विश्लेषण विभिन्न तरह से किया जाता है, पर उन अवयवों की परिव्याप्ति विश्वमानवता की सहज अभिव्यक्ति है। इस संदर्भ में यह कहना ही होगा कि भारतीय चित्त को रवीन्द्रनाथ ने बड़ी सहजता के साथ अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है तथा उस

सहजता पर जिस ओर से हमले हुए या हमले होने की आशंका दिखी, उन दोनों पर रवीन्द्रनाथ ने बज्राघात किया। यह तभी संभव हो सकता है, जब किसी रचनाकार का भारतीय चित्त जाग्रत हो। इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि उन्होंने सिर्फ भारतीय चित्त की वकालत की तथा कुछ साक्ष्य उपस्थित करते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान स्थापित की। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उनकी जो एक अद्वितीय पहचान कायम हुई, उसके पीछे उनकी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना की भूमिका है। ऐसा महसूस होता है कि उन्होंने साम्राज्यवाद विरोधी जागरुकता का स्थान इसलिए अपनी रचनाओं में निरूपित किया ताकि भारतीय चित्त की गंभीरता भी उपस्थित हो सके। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घट रहे घटनाक्रमों के मद्देनजर भारतीय चित्त की व्याख्या करना या भारतीय रूपक-उपमा को विश्व स्तर पर पूरी तन्मयता के साथ पेश करना मौलिक चिंतन का ही प्रतिफलन है।

इस मौलिक चिंतन के आधार पर उनके जीवन दर्शन का आकलन करना सहज तथा बोधगम्य होता है। इस बोधगम्यता में किसी कवि के मन का अवलोकन किया जा सकता है। भारतीय चित्त के संबंध में कवि-आलोचक विजेन्द्र ने बिल्कुल ठीक कहा है- ''भारतीय चित्त एकरस और हठधर्मी कभी नहीं रहा। वह बहुत नरम और लचीला है। अपने मूल स्वभाव में ग्रहीता और अभिदानी। इसलिए उसमें बराबर विकास हुआ है। यह एक ऐसी सहज सामान्य प्रक्रिया है जो हर देश के मनुष्य चित्त में पायी जाती है। पर यह भी तय है कि हर देश का चित्त अपनी धरती-वहां की जलवायु, इतिहास, सामाजिक संरचना और संस्कृति की गहरी छाप अपने ऊपर लिये रहता है।''[3] इसके जरिये कविता के स्वभाव पर कवि का स्वभाव हावी हो, ऐसा नहीं होता है। कविता और कवि के स्वभाव एक-दूसरे के द्वंद्व से एक नयी जीवनधर्मिता का निर्माण करते हैं। यही निर्माण समाज में एक स्थायी आधार को पैदा करता है तथा एक लाइट पोस्ट की तरह समाज के उन रास्तों को रोशन करता है, जिन रास्तों पर दुनिया को रहने लायक बनाने वालों का काफिला चलता है। इसी को देखते हुए लोगों ने कहा है कि चलना ही जीवन है। यह गतिशीलता को जारी रखने के लिए एक निर्मम उपदेश नहीं है, बल्कि

Scanned with CamScanner

सच्चाई है। इस सच्चाई को कविता के अंतर्गत देखने की जरूरत है। इस सच्चाई की पुष्टि तभी होती है जब दूसरों को आगे बढ़ने में कविता पाथेय की भूमिका अदा कर सके।

जीवन की जटिलताओं से मुठभेड़ करने में जहां एक ओर कविता कारगर हथियार साबित होती है, वहीं उन तमाम यात्रियों के लिए कविता पाथेय की भूमिका अदा करती है, जिन यात्रियों ने जीवन के दुर्गम मार्ग पर अपने लक्ष्य को स्थापित करने की यात्रा शुरू की है। इसके जरिये ही कविता के स्वभाव को समझा जा सकता है।

21 वीं सदी में कविता के स्वभाव पर चर्चा तेज हुई है। इस संदर्भ में 'प्रतिश्रुति' पत्रिका के सम्पादकीय में बिल्कुल ठीक ही कहा गया है- ''कविता स्वभावत: बहुत कम बोलती है। इशारे अधिक करती है। बल्कि यह कहना चाहिए कि वह 'संकेत' ही करती है। साहित्य की यह विधा सबसे अधिक स्पन्दनमयी होती है। कविता में शब्द, बिम्ब और संगीत आपस में घुले-मिले रहते हैं- 'पानी में को लौन' की तरह एक-दूजे में समाहित। इसका भावबोध इंद्रियबोधात्मक होने के साथ-साथ लोकधर्मी रंग में रंगा होता है। क्रियाशील जीवन के ऐन्द्रिक बिम्ब, विचार-खनिज और जीवनद्रव ही कविता के प्राण हैं। इन प्राणों की रक्षा शब्द की सतत साधना से ही संभव है।''[4]

रवीन्द्रनाथ की कविताओं का स्वभाव भी इसी तरह है, उनकी कविताओं में शब्द-बिम्ब-संगीत सभी एक साथ घुले-मिले हैं, जिन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। यदि कोई उन्हें एक-दूसरे से अलग-थलग करने की कोशिश करे, तो यही महसूस होगा कि कविता के साथ छेड़छाड़ करने की चेष्टा की गयी है। इस कुचेष्टा के विरुद्ध भी आवाज उठाने की जरूरत है। यह कुचेष्टा कविता को ध्वस्त करने की साजिश है, जिसका पर्दाफाश करना जरूरी है। यदि वचन को परखा नहीं जाता है तो यही कारण समझना चाहिए की कुछ गलती हुई है या गलती की गयी है। इस गलती से एक भारी नुकसान होता है। और नुकसान कुछ और नहीं है, सिर्फ सहजता की मौत हो जाती है। सहजता की रक्षा करना एक कवि का सबसे बड़ा कर्त्तव्य होता है। इस कर्त्तव्य का पालन तभी हो सकता है, जब

आनंद-मंगल को समाज में स्थापित किया जाय। इस सच को यदि कबीर के शब्दों में स्थापित किया जाय, तो सबसे अच्छी बात है। कबीर के शब्दों में- ''कहैं कबीर सुनो हो साधो, अमृत-वचन हमार।/ जो भल चाहो आपनो, परखो करो विचार।।/ जे करता तैं ऊपजै, तासों परि गयौ बीच।/ अपनी बुद्धि बिबेक-बिन, सहज बिसाही मीच।।/''[5] कविता इसी सच की प्रतिध्वनि है। यह प्रतिध्वनि उस कवि की पहचान बन जाती है। यह पहचान हर काल-खंड में संघर्षशील जनता के साथ खड़ी होती है, जो उसे शिखर पर विराजमान करती है। अली सरदार जाफरी ने बिल्कुल ठीक लिखा है- ''महान कविता की यह अनोखी विशेषता है कि बहुधा वह अपने रचयिता से असंबद्ध हो जाती है। फिर उसके अस्तित्व से कवि का अस्तित्व पहचाना जाता है क्योंकि उसके जीवन के हालात बीते हुए समय के धुंधलके में खो जाते हैं और घटनाएं कहानियों का रूप धारण कर लेती हैं।''[6] रवीन्द्रनाथ को यह मालूम था कि समय के धुंधलके में खोये महत्वपूर्ण घटनाक्रमों को कैसे बाहर निकाला जाय तथा उन घटनाक्रमों को किस तरह सामाजिक और आर्थिक संबंधों के परिवर्तन की रोशनी में रखते हुए विचार और प्रगति के साथ गहरा रिश्ता कायम किया जाय। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में शुरू से लेकर अंत तक विचार और चेतना की प्रगति निरंतर बढ़ती चली जा रही है। इस संदर्भ में रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का सम्यक विश्लेषण आज भी समय का तकाजा बना हुआ है।

कवि रवीन्द्रनाथ के विविध आयामों को रेखांकित करने तथा उनके महत्व को जन-जन तक पहुंचाने के लिए प्रयास जारी रखने के दरम्यान यही लगता है कि रवीन्द्रनाथ का विश्लेषण यांत्रिक ढंग से नहीं हो सकता है। उनके व्यक्तित्व के एक छोर पर प्रगतिशीलता और दूसरे छोर पर प्रतिक्रियावादी को रखने से उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। वैसे कुछ आलोचकों ने पूरी सपाटता के साथ उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन इसी तरह करने की कोशिश की है। समय के द्वंद्व को समझे बिना रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का मूल्यांकन कठिन है। उनके समय का द्वंद्व भी लाजवाब है। ऐसा द्वंद्व खोजने पर भी नहीं मिलेगा। महान कवि रवीन्द्रनाथ

Scanned with CamScanner

उस द्वंद्व से टकराते हैं, तथा एक निष्कर्ष को स्थापित करते हैं। इस स्थापना को सहज रूप में देखने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिये तत्कालीन समाज को कूपमंडूकता से बाहर निकालने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने एक जीवन-बोध से लोगों का परिचय कराने की चेष्टा की। इसी चेष्टा ने रवीन्द्रनाथ को काव्य की दुनिया में एक अद्वितीय और अनोखा स्थान प्रदान किया है। रवीन्द्रनाथ की कविताओं में समय, भाव, चित्त चकाचौंध दुनिया में एक राह तलाशते हैं।

ऐसा महसूस होता है कि उनकी कविताएं अनंत यात्रा की वाहक हैं। रवीन्द्र साहित्य के मर्मज्ञ बुद्धदेव भट्टाचार्य ने उनकी कविताओं के संबंध में बिल्कुल ठीक लिखा है- ''बांग्ला-काव्य की परम्परा के साधारण नियमों के तहत उन्हें बांधना सहज नहीं है। पथ-प्रांत-उपकूल इत्यादि को पार करते हुए उनकी कविताओं का विस्तार समुद्र से भी बड़ा दिखता है, जो प्रत्येक ऋतु के रूप, रस और गंध से सराबोर दिखता है। मानवता के स्पर्श के चलते इंद्रधनुषी रंग अत्यंत उज्ज्वल दिखता है। भानुसिंह की पदावली से लेकर जीवन के अंतिम क्षण तक कविता-गीतों में प्रवृत्ति, ईश्वर, प्रेम, देश, विदेश, जन्म और मृत्यु विद्यमान हैं। रूप दक्ष रवीन्द्रनाथ ने रूप सागर में डुबकी लगाकर जो सामने प्रस्तुत किया है, उसकी सुगंध आज भी उनके उत्तराधिकारियों के साथ है। उनकी कविताओं में जीवन-मृत्यु-ईश्वर की भावनाओं के सूत्र उपनिषद के निर्यास के जरिये उपस्थित हो पाये हैं। इस आनन्दधारा की परिणति के अंतिम पर्याय में एक रहस्यावृत्त भी दिखता है। अपने हृदय के गहन द्वार पर कवि दूसरी सत्ता की तलाश करते हैं। खासकर अपने रेखांकन और कला-कृतियों में उनकी यह तलाश जारी रहती है। मृत्यु को युग से युगांतर तक ले जाने की पहल दिखती है।''[7]

रवीन्द्रनाथ ने मृत्यु को करीब से देखा है तथा उसका सही विश्लेषण प्रस्तुत किया है। ऐसा विश्लेषण और कहीं दूसरी जगह खोजने के बावजूद नहीं मिलता है। रवीन्द्रनाथ ने विश्व साहित्य के आंगन में मृत्यु के संभाव्य रूप को उपस्थित किया, जो अत्यंत समीचीन है। जीवन के अंत के रूप में नहीं बल्कि जीवन की पूर्णता के रूप में मृत्यु को उपस्थित करना सहज नहीं है। लेकिन जब रवीन्द्रनाथ

के जरिये मृत्यु काव्य का विषय बनती है, तो लगता है कि यह एक महत्वपूर्ण विषय है। इस विषय को उपस्थित करना तथा उसके अनुरूप साहित्य के अंतर्गत रसों का उद्घाटन कवि की सौन्दर्य दृष्टि को एक नया रूप प्रदान करता है। और यह नया रूप कवि को श्रेष्ठता की ओर ले जाने की कोशिश करता है। इस संदर्भ में भाषाशास्त्री पवित्र सरकार ने लिखा है- ''सभी कवि जीवन के कवि हैं, लेकिन जो मृत्यु के कवि हैं, शायद वही महान कवि का स्वरूप धारण कर पाते हैं, क्योंकि वे जीवन और मृत्यु— इन दोनों घटनाओं को मिलाकर सम्पूर्णता हासिल करते हैं, जो समग्र अस्तित्व है, उसकी छवि वे एक साथ देख पाते हैं। रवीन्द्रनाथ प्रगाढ़ जीवन के कवि हैं, यह सिर्फ वाक्य लिखने के लिए वाक्य नहीं है। हमारे उस व्यापक विश्वलोक को बचाने के लिए उन्होंने सूत्र दिये हैं। विशुद्ध मानव को जाति, वर्ण, सम्प्रदाय से बाहर निकाला। मानवसत्ता से स्नेह करते हुए वंचितों को शक्ति और सम्मान दिया। जीवंत जगत का निसर्ग जगत के साथ सेवा और सौन्दर्य का बंधन तैयार किया तथा समग्र विश्व चराचर को सभी के साथ धन्य और कृतार्थ करने की कोशिश की। यही उनका असीम के साथ अशेष का शामिल होना है। उनका असीम किसी अलौकिकता के साथ जुड़ा हुआ नहीं है।''[8]

उसी लेख में इसे स्पष्ट करने के संबंध में पवित्र सरकार ने हेमन्तबाला देवी को लिखे एक पत्र का जिक्र किया। हेमन्तबाला देवी को पत्र लिखते हुए रवीन्द्रनाथ ने कहा था- मेरा भगवान मंदिर में नहीं है, प्रतिमा में नहीं है, बैकुंठ में नहीं है- मेरा भगवान लोगों के बीच है, जहां भूख -प्यास ही सत्य है, इच्छा है। नींद की दरकार है। पवित्र सरकार ने अपने इसी आलेख में आगे लिखा है- ''मृत्यु के संबंध में रवीन्द्रनाथ ने जो बातें उठायी हैं, शोधकर्त्ताओं का ध्यान उस ओर गया है। जीवन जिस तरह सुख-दुःख के साथ बना है, दुःख जीवन को मूल्यवान बनाता है; उसी तरह सभी दुःख और सभी डर का चरम जो मृत्यु है, वह भी ज़ीवन के लिए एक अनिवार्य हिस्सा है। यदि मुझे जीवन मिलता है, तो मृत्यु को भी मुझे पाना होगा। इस सच की राह से भागने का कहीं, कोई स्थान नहीं है। जीवन में बहुत कुछ अनिश्चित होने के बावजूद मृत्यु एक घटना के रूप

Scanned with CamScanner

है सुनिश्चित संघटक है, इस बात को जानते हैं। जानते हुए भी उसे भूले रहने की कोशिश करते हैं, मृत्यु को इस अनिवार्यता को भूलने या पीछे ठेल देने की चेष्टा करते हैं। रवीन्द्रनाथ जीवन और मृत्यु दोनों को समग्रता के बीच रखकर देखने वाले दुनिया के महान कवियों में अन्यतम हैं।''[9]

ऐसा इसलिए संभव हो सका, क्योंकि उन्होंने मानवीय दृष्टि से विश्व को देखा तथा भारत को उसके प्रस्तुत की। इस बारे में बुद्धदेव भट्टाचार्य ने अपने आलेख 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अन्तर्राष्ट्रीयता' के संबंध में लिखा है- ''जब कांग्रेस ने देशवासी को विभाजित किया, तब महाजाति सदन में उद्घाटन में शामिल होकर उन्होंने अपने मतभेद को प्रकट किया। क्रांतिकारी आतंकवाद के प्रति भी उनकी विरूपता जग-जाहिर थी। उन्होंने कभी भी उस रास्ते को अपने मन में स्थान नहीं बनाने दिया। उस रास्ते के यौद्धों को उन्होंने खलनायक के रूप में देखा। उन्होंने अपने 'आइडिया' के आधार पर भारत को छवि बनायी।''[10] पराधीन भारत के चित्र को उन्होंने प्रस्तुत करते हुए कहा दिया कि जमींदारी व्यवस्था की असलियत मानव-सभ्यता को पीछे धकेलने जैसे कुकर्मों में छिपी हुई है। किसानों की दीनता-दरिद्रता का असल कारण जमींदारी व्यवस्था है। उस व्यवस्था ने समाज को न केवल भीतर से ध्वस्त किया बल्कि औपनिवेशिकता के लिए एक तरह से जगह बनाने की कोशिश की, इस सच्चाई को भी रवीन्द्रनाथ ने पूरी तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया। विश्व मानव के समक्ष उपस्थित सारी चुनौतियों से मुकाबले का रवीन्द्रनाथ का लेखन महत्वपूर्ण सबूत है। इस सबूत को विकृत करने की भी कोशिश की गयी।

इतिहास को विकृत करने का खेल कितना खराब परिणाम देता है, यह बात उन्हें तब पता चली जब इटली से मुसोलिनी ने उन्हें इटली आने का न्यौता दिया था। कहने का अभिप्राय यही है कि फासीवाद को नजदीक से देखने का उन्हें मौका मिला, उसके कौभत्स रूप को रवीन्द्रनाथ ने जिस तरह से अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया, वैसा स्वरूप और दूसरी जगह देखने को नहीं मिलता है। इस संदर्भ में यह कहना उचित होगा कि अंतर्राष्ट्रीय जगत में रवीन्द्रनाथ ने जो स्थान बनाया, जिसे देखकर पश्चिम को आश्चर्य होता है, वह आज भी संघर्षशील जनता

के लिए एक दृष्टांत है। इस दृष्टांत का विकल्प और कहीं दूसरी जगह देखने को नहीं मिलता है। उन्होंने साम्राज्यवाद की ध्वसंलीला को परखते हुए स्पष्ट शब्दों में स्थापित किया है कि मानव सभ्यता का विकास समुचित रूप में किसी कीमत पर साम्राज्यवाद नहीं करेगा। निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए साम्राज्यवाद पूरी दुनिया को युद्ध की आग में झोंकता है।

रवीन्द्रनाथ ने दो महायुद्धों, साम्राज्यवादियों द्वारा गुलाम बनाने की घृणित लालसाओं तथा पूंजीवादी व्यवस्था की सनक इत्यादि को जिस रूप में व्याख्यायित किया है, उसका अपना ऐतिहासिक महत्व है। इस ऐतिहासिक महत्व को आज के संदर्भ में किसी तरह ओझल नहीं किया जा सकता। पूंजीवादी व्यवस्था को वजह से रवीन्द्रनाथ काफी व्यथित थे, इस बात की झलक उनकी रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है। तत्कालीन समाज में किसान-मजदूर-मेहनतकशों के प्रति जो अमानवीय व्यवहार किया जाता था, उस व्यवहार ने रवीन्द्रनाथ को भीतर तक काफी कष्ट पहुंचाया। अमेरिकी साम्राज्यवादियों द्वारा वैभव जमा करने के विरुद्ध भी उनके मन में व्यापक घृणा थी। उन्हें पूरा विश्वास था कि मानवीय स्वभाव को अमानवीय बनाने में व्यवस्था का सबसे बड़ा हाथ है, इसलिए उस व्यवस्था के खिलाफ लोगों की सक्रियता बढ़ाने की जरूरत है। उसी जरूरत को ध्यान में रखते हुए उन्होंने वर्गीय द्वंद्व का सटीक और प्रासंगिक मूल्यांकन किया। गरीब और अमीर के द्वंद्व को वैज्ञानिक नजरिये से देखने वाले रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में कहीं यह देखने को नहीं मिलता कि आधुनिक उद्योग से परम्परागत कृषि की ओर वापस आने से समाज का कल्याण होता है। समाज की मंगल कामना के लेखक रवि ठाकुर ने कृषि से उद्योग की ओर बढ़ने का संकेत दिया है।

विकास की धारा को उन्होंने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया था। इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर विचार करते हुए नंददुलारे वाजपेयी ने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि रवि ठाकुर ने हर तरह के जड़त्व को तोड़ने की कोशिश की। पराधीनता के दौरान जड़त्व को तोड़ना मुश्किल होता है। पराधीनता ही जड़त्व की जननी है। ब्रितानी उपनिवेशवाद की प्रधानता ही जड़त्व को बढ़ाना

Scanned with CamScanner

था। वैसे कहने के लिए यही कहा जाता है कि हर विकास का सूत्रपात उसी जमाने में हुआ।

आधुनिक भारत का निर्माण हुआ, कुछ आलोचक यह भी बताते हैं। लेकिन सच है कि ब्रिटानी शासन के जमाने में जो नीतियां बनायी जा रही थीं, उन नीतियों से यदि किसी को लाभ पहुंच रहा था, तो वह खाये-पीये-अघाये लोग थे। वैसे जड़त्व तोड़ने का प्रयास विभिन्न स्तर पर हो रहा था। खासकर अनुभूति के स्तर पर इस काम को अंजाम देना कठिन होता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस सिलसिले में जो प्रस्तुत किया, वह अपने-आप में अद्वितीय है। इस सच की ओर संकेत करते हुए नंददुलारे वाजपेयी ने बिल्कुल सही लिखा है- ''रवि बाबू स्वदेश-प्रेम को संपूर्ण मनुष्यता और विश्व प्रेम के धरातल पर उठाकर रखने में समर्थ हुए हैं, उन्होंने स्वदेश की प्रादेशिक सीमा के जड़त्व का नाश किया है- अपनी उदार अनुभूतियों और अपनी विराट कल्पना की सहायता से।''[11]

विश्व मानव की अवधारणा रवीन्द्रनाथ की है। इस अवधारणा के समक्ष जो दानव दिख रहा था, वह फासीवाद ही था। यह सच है कि फासीवाद की पराजय उनके सामने नहीं हो पायी। उनकी मृत्यु के बाद फासीवाद की हार हुई। लेकिन रवीन्द्रनाथ को पूरा विश्वास था कि फासीवाद की पराजय होकर रहेगी। उल्लेखनीय है कि 9 मई 1945 को सोवियत संघ ने फासीवाद के खिलाफ विजय दिवस मनाने की घोषणा की। 23 अप्रैल 1945 को लाल फौज ने हिटलर की दानवी सेना को हराकर बर्लिन में प्रवेश किया। सिर्फ आठ दिन अभियान चलाने के बाद लाल फौज को बर्लिन में प्रवेश करने में सफलता मिली थी। लाल फौज ने 16 अप्रैल को यह अभियान शुरू किया था। 23 अप्रैल 1945 को नर संहारक हिटलर वाहिनी को परास्त करने के बाद दुनिया को यह सूचना मिली कि 30 अप्रैल 1945 को हिटलर ने आत्महत्या की। उस आत्महत्या से पहले दुनिया भर में यह भी खबर आयी कि 28 अप्रैल 1945 को फासीवाद के नायक मुसोलिनी को इटली की मिलान पार्टी के कार्यकर्त्ताओं ने प्राणदंड दिया। यह खबर सुनने के बाद हिटलर को आत्महत्या करने के अलावा और दूसरा क्या उपाय था? हिटलर द्वारा आत्महत्या करने के कई घंटों के बाद हिटलर के विश्व विख्यात प्रचार मंत्री

गोयेब्लस ने आत्महत्या की, उसकी मृत्युतिथि 1 मई 1945 है। इस तरह दानवों का विनाश हुआ।

इसका आभास महान कवि रवीन्द्रनाथ को हो गया था। उन्होंने अपनी मृत्यु से ठीक आठ दिन पहले यानी 30 जुलाई 1941 को उद्घोष किया- ''पारबे, पारबे, ओरा पारबे, भारी अहंकार हयेछे दानबेर।'' 7 अगस्त को इस दुनिया से मृत्यु ने महान कवि रवीन्द्रनाथ को सदा के लिए छीन लिया, लेकिन रवीन्द्रनाथ आज भी दुनिया को नयी दिशा दे रहे हैं, जिन्होंने 1939 में ही कहा था कि मानव इतिहास में फासीज्म और नात्सीज्म के कलंक के प्रलेप को और बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। पूरी दुनिया में फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वालों में रवीन्द्रनाथ का स्थान अन्यतम है। जब खाये-पीये-अघाये लोगों की ओर से हिटलर और मुसोलिनी को 'भाग्य विधाता' कहकर प्रचारित किया जा रहा था, तब रवीन्द्रनाथ पूरी ताकत के साथ फासीवाद के प्रति घृणा व्यक्त कर रहे थे। उसके बारे में मार्क्सवादी चिंतक तथा पश्चिम बंग गणतांत्रिक लेखक शिल्पी संघ के महासचिव अनुनय चट्टोपाध्याय ने अपने लेख 'राष्ट्रशक्ति और जनशक्ति : रवीन्द्रनाथ' शीर्षक में बिल्कुल सही लिखा है- ''अमिय चक्रवर्ती को उन्होंने पत्र लिखते हुए फासीवादी नर पिशाचों के भयंकर चित्र प्रस्तुत किये।... उनका बनाया हुआ मुसोलिनी का चित्र आज विश्व विख्यात है। अपनी छोटी-छोटी कविताओं में उन्होंने फासीवाद का विरोध किया तथा हिटलर की छोटी-छोटी मूंछों पर व्यंग्यात्मक कविताएं लिखीं। [12] माडर्न रिव्यू के अक्टूबर 1939 में उन्होंने साफ-साफ लिखा कि- We cannot have peace till we deserve it by paying full price which is that the strong must cease to be greedy and the weak must learn to be bold. इस उद्घोष के बावजूद आज भी कुछ लोग यह मानते हैं कि रवीन्द्रनाथ मुसोलिनी के न्यौते पर इटली गये थे। यह न्यौता क्यों दिया गया, इसका स्पष्टीकरण करते हुए प्रो. शुभंकर चक्रवर्ती ने लिखा है- ''इस तरह की बात कही जाती है- मुसोलिनी के झांसे में आकर रवीन्द्रनाथ ने सामयिक तौर पर फासीवाद का समर्थन किया था। लेकिन

Scanned with CamScanner

ऐसी बात नहीं है- रवीन्द्रनाथ ने कभी भी फासीवाद का समर्थन नहीं किया। एंड्रूज को उन्होंने पत्र लिखते हुए कहा- 'मैं फासीवाद का समर्थन करूं, इसकी कल्पना करना भी हास्यास्पद है।' जो हुआ था, वह है- किताब और पुस्तकालय के प्रति रवीन्द्रनाथ को काफी लगाव था। विश्वभारती के पुस्तकालय को विश्व स्तरीय पुस्तकालय बनाना; उनका स्वप्न था। विश्व कवि की इच्छा थी- इटली के पुस्तकालय की तरह एक पूर्णांग पुस्तकालय बनाना जब कवि इसके लिए चिंतित थे, तब एक आश्चर्य की तरह मुसोलिनी ने रवीन्द्रनाथ को व्यक्तिगत उपहार भेजा- विश्वभारती के लिए इटली साहित्य का पूर्णांग एक पुस्तकालय। मुसोलिनी की यही चालाकी थी कि रवीन्द्रनाथ को अनुगृहीत कर उनका किसी तरह इस्तेमाल करो, ताकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों का ध्यान इस ओर जाय कि रवीन्द्रनाथ ने भी फासीवाद का समर्थन करना शुरू कर दिया। किताब प्राप्त करने के बाद रवीन्द्रनाथ ने मुसोलिनी को टेलीग्राम करते हुए आभार व्यक्त किया। इटली में दो बार मुसोलिनी से रवीन्द्रनाथ की भेंट भी हुई थी।"[13]

रवीन्द्रनाथ इस भेंट के दौरान समझ गये कि जिस व्यक्ति से मुलाकात हो रही है, उसके चेहरे पर मुखौटा लगा हुआ है, तभी तो मुसोलिनी के होंठों की हंसी मानव की सहज हंसी से अलग उन्हें दिखने लगी। फासिस्ट का एक तरीका है, किसी तरह छल, प्रपंच से बड़ी-बड़ी हस्तियों को अपने पक्ष में कर लेना, लेकिन ऐसा संभव नहीं होता। प्रपंच के जरिये मानव सभ्यता के पथ प्रदर्शक को विचलित नहीं किया जा सकता है, इसलिए उन पथ प्रदर्शकों को अच्छी तरह मालूम होता है, कि मानव विरोधी शक्तियां किसी भी रूप में हमले करेंगी। उल्लेखनीय है कि उस समय भी मुसोलिनी के पिछलग्गू पत्र-पत्रिकाओं समेत बुद्धिजीवी और सभ्य समाज के अति सभ्य व्यक्तियों ने रवीन्द्रनाथ तथा मुसोलिनी की इस भेंट को इस तरह प्रस्तुत किया कि फासीवाद मानव-सभ्यता की अनिवार्य शर्त है। लेकिन इस घटना के बाद रवीन्द्रनाथ ने काफी नजदीक से फासीवाद को देखा और उसकी असलियत को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। यह सच है कि रोमां रोला जैसे मानववादी लेखक ने रवीन्द्रनाथ को फासीवाद की हकीकत को समझने में काफी मदद की। इस सिलसिले में फ्रांस विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के प्रोफेसर

गुल्लिमो सालवादोर की पत्नी श्रीमती सालवादोर ने रवि ठाकुर के सामने प्रत्यक्ष अनुभव प्रस्तुत किया। श्रीमती सालवादोर ने रवीन्द्रनाथ से कहा कि उनके पति ने फासीवाद के वीभत्स रूप को जब अपने लेख में प्रस्तुत किया, तब मुसोलिन के अनुचर 'कालेकोट' वालों ने किस तरह उनके पति को पीटा। उन काले कोट वालों ने कनसालो को नींद से उठाकर उनके बच्चों के सामने गोली मार दी।

इस तरह की असंख्य घटनाएं जानने के बाद रवीन्द्रनाथ ने उसी समय कहा कि यदि पता होता कि मुसोलिनी इटली में इस तरह वीभत्स रूप में नाच रहा है, तो कभी इटली नहीं आता। इस तरह उन्हें यह पता चला कि हिटलर भी मुसोलिनो की तरह जर्मनी में लेखक-कलाकारों पर अत्याचार कर रहा है। फासिस्टों-नाजियों की जात एक है। एक तरह की समस्याओं के निराकरण करने के लिए कवि रवीन्द्रनाथ ने जो प्रयास जारी किया, उस प्रयास के एक-एक शब्द पर गहराई से सोचने पर लगता है कि रवीन्द्रनाथ की लेखनी फासीवाद के खिलाफ आग उगलती है। तभी तो रवीन्द्रनाथ ने कहा कि इटली आकर मैंने गलती की, इसका परिशोधन करना होगा। उन्होंने विश्ववासियों को भरोसा देते हुए लिखा कि जो अपवित्र आग मानव को ग्रस रही है, उससे क्या मैं खेलूंगा? इस तरह के अनेक छोटे-छोटे बयानों के जरिये हकीकत का इजहार करते हुए दुनिया के कोने-कोने में चाहे जिस रूप में प्रतिक्रियावादी ताकतें काम कर रही थीं, उन तमाम ताकतों की निंदा करते हुए रवीन्द्रनाथ ने जापानी साम्राज्यवाद की तीखी निंदा की।

जब चीन पर जापान ने हमला किया, तब विश्व कवि रवीन्द्रनाथ विचलित हो गये। आजीवन उन्होंने फासीवाद की निन्दा की है। इस घटना के संबंध में प्रो. शुभंकर चक्रवर्ती ने लिखा है- "रवीन्द्रनाथ अवहित हुए कि जर्मनी में फासिस्टों के नायक हिटलर की नात्सी-वाहिनी के हाथों शिल्पी साहित्यिक मनीषी उत्पीड़ित हुए हैं। उनकी रचनाओं को आग में झोंका गया। कवि ने जापान में फासीवाद के संत्रास का वृत्तांत सुना। उल्लेखनीय है कि वामपंथी लेखकों को पुलिस हिफाजत में पीटा गया। शिक्षण संस्थानों- विश्वविद्यालयों से कम्युनिस्ट और वामपंथी शिक्षकों को न केवल भगाया गया बल्कि अनेक शिक्षकों को गिरफ्तार किया गया। वामपंथी विचारधारा से जुड़ी किताबों को जलाया गया। चीन को

Scanned with CamScanner

धरती पर जापान के नृशंस ध्वंसात्मक कार्यकलापों ने रवि ठाकुर को क्षुब्ध और विचलित किया था। इस सब ने रवीन्द्रनाथ के मन में फासीवाद के संबंध में वितृष्णा और घृणा पैदा की, जो उनके मन में आजीवन बनी रही। निबंध, कविता, चिट्ठी-पत्री इत्यादि में उन्होंने फासिस्ट-नात्सी के खिलाफ क्षोभ, भर्त्सना, संग्राम की घोषणा की।''[14] इसी तरह जब उन्हें पता चला कि स्पेन में फासिस्ट फ्रैंकों के अधिपत्य में जनतांत्रिक शक्तियों को कुचला जा रहा है, तब उन्होंने विश्व मानवता के समक्ष फ्रैंको के खिलाफ आवाज बुलंद करने का आह्वान किया। उन्होंने लिखा है : ''...I appeal to the conscience of humanity to help the People's Front in Spain, help the government of the People, cry in a million voices, halt to reaction, come in your millions to the aid of democracy to the success of civilization and culture.''

रवीन्द्रनाथ ने जापानी फासिस्ट नागची की कड़ी भर्त्सना की। 'लीग अगेंस्ट फासिज्म एंड वार' की भारतीय शाखा की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने फासीवाद के विरुद्ध जोरदार संघर्ष करने का आह्वान किया। जलियांवाला बाग नरसंहार का प्रतिवाद करते हुए उन्होंने 'नाइट' पदवी लौटा दी। उस वक्त उन्होंने जो एक खुली चिट्टी लिखी थी, उसका ऐतिहासिक महत्व है। उस चिट्टी में उन्होंने साफ-साफ कहा था कि करोड़ों भारतीय प्रजा आकस्मिक आतंक के चलते निर्वाक हो गयी, उसकी आपत्ति को वाणी देने का प्रयास इस चिट्ठी के जरिये करूंगा। जब 1924 में नेताजी सुभाष चंद्र बसु की गिरफ्तारी हुई, उन्होंने उस गिरफ्तारी का कड़ा विरोध प्रकट करते हुए कहा कि मनुष्य अपने ज्ञान, कर्म, प्रेम और बुद्धि द्वारा जिस देश की सृष्टि करता है, वही उसका स्वदेश है। रवीन्द्रनाथ को स्वदेश से जितना लगाव था, उससे कहीं अधिक लगाव पूरी दुनिया से था, क्योंकि सच्चे अर्थों में रवीन्द्रनाथ मानव के साथी थे। यही कारण है कि आज भी यदि दुनिया के किसी कोने से मानवता पर हमला होता है, तो रवीन्द्रनाथ की आवाज वातावरण में एक प्राचीर बन जाती है। फासीवाद के खिलाफ उनकी वाणी प्रेरणा दे रही है।

रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में मानवता की वकालत हुई है तथा फासीवाद के खिलाफ शंखनाद हुआ है। उन दोनों की समीक्षा करने से यही पता चलता है कि

फासीवाद जनतंत्र विरोधी है। बुर्जुआ जनतंत्र की हत्या करने में विश्वास रखता है। वह पूंजीवादी सभ्यता-संस्कृति का अनुकरण करता है, लेकिन फासीवाद खुद को वर्गीय अवधारणा से अलग रखने की कोशिश करता है। साम्राज्यवाद और अंधराष्ट्रीयतावाद के प्रति उसका गहरा लगाव ही नहीं होता है, बल्कि यही उसकी चालिका शक्ति है। हिंसा-संत्रास फैलाना उसका क्रियाकलाप है। इस तरह के जन विरोधी कार्यक्रमों को अपनाने के लिए झूठ का सहारा लेता है। लोगों में भ्रांति पैदा करता है। और जब देखता है कि पूरी तरह से लोगों में भ्रांति पैदा हो गयी है, तो उसका वह लाभ उठाते हुए संत्रास-आतंक फैलाना आरम्भ कर देता है। विचार व्यक्त करने की आजादी फासीवाद नहीं देता है। विवेक-तर्क के खिलाफ काम करता है। गुप्त अपराध और आतंकी तरीके से काम करता है। उसका एक दुनियाव्यापी स्वरूप भी है। उस स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि फासीवाद दूसरे राज्यों को निगलता है। उसका स्वरूप आधिपत्यवादी और उग्र समरवादी होता है। हिंसा, अराजकता, सत्ता पर कब्जा करने की ललक, उपनिवेशवाद, फाटका पूंजी, कट्ट जाति विद्वेष, जनतांत्रिक अधिकारों को कुचलना, अंतर्राष्ट्रीयतावाद को ध्वंस करना, मजदूर शोषण, अंध राष्ट्रीयतावाद, अंध कम्युनिस्ट विद्वेष, नीति-नैतिकताविहीन बुद्धिजीवियों को जमा करने की सनक फासीवाद के चारित्रिक गुण हैं। किसी तरह सत्ता पर काबिज होकर मानव-सभ्यता को ध्वस्त करना उसका सर्वोपरि लक्ष्य है। यदि कुल मिलाकर देखा जाय, तो फासीवाद एक तरह से पशु गर्जन है।

फासीवाद की व्याख्या करते हुए यह भी कहा जा सकता है कि फासीवाद का जन्म पूंजीवाद की कोख से होता है। पूंजीवाद एक घाव है तथा फासीवाद उसका मवाद। साम्राज्यवाद उस घाव का सबसे बड़ा पीड़ादायक-कष्टदायक शिखर है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि फासीवाद साम्राज्यवाद के भीतर छिपा होता है। रवीन्द्रनाथ ने अमेरिकी साम्राज्यवाद की कड़ी निन्दा की है। चित्रकार-नाटककार इन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय ने अपने लेख 'फासीवाद विरोधी रवीन्द्रनाथ फिरे देखा, सामने देखा' में लिखा है- ''रोमां और रवीन्द्रनाथ ने अच्छी तरह समझ

Scanned with CamScanner

लिया था कि यदि फासीवाद को रोका नहीं जा सकता है, तो सभ्यता के अंतर्गत जनतंत्र नाम की कोई चीज नहीं रह पायेगी। अमेरिकी साम्राज्यवाद ने शताब्दी बनाने का आह्वान 1923 में किया था। ...अमेरिका सिर्फ साम्राज्यवाद तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसके भीतर से फासीवादी बीमारी भी बाहर झांकती है। इटली के दो युवा कम्युनिस्टों पर अमेरिका के खिलाफ षडयंत्र करने का आरोप लगा कर उन्हें फांसी की सजा दी गयी। उनमें से एक साक्को भानजेओ थे। साक्को भानजेओ की मृत्यु ने उन्हें भीतर तक आघात पहुंचाया था। उस समय उन्होंने अमेरिकावासियों के नाम पत्र लिखते हुए कहा कि अमेरिका ने जो कलंक लगाया है अमेरिकावासियों को चाहिए कि इस कलंक को तुरंत मिटायें। इसी पत्र में रवीन्द्रनाथ ने लिखा था— 'यदि नरक नामक कहीं जगह होगी, तो उसका शीर्ष सिंहासन अमेरिका के लिए ही रखा होगा।' "[15]

उल्लेखनीय है कि फासीवाद के उद्‌भव-विकास-स्वरूप तथा उसकी शासन नीति के संबंध में रोमां रोला, अरी बारसूर, वाटाण्ड, गोर्की, चार्ली चैपलीन, आईंस्टीन जैसी महान विभूतियों ने जो अपना-अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया था, उस विश्लेषण के संबंध में रवीन्द्रनाथ की दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट थी। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उन सभी विभूतियों के साथ मिलकर फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष शुरू किया। पूंजीवाद के महासंकट के कारण फासीवाद का जन्म हुआ। फासीवाद धीरे-धीरे हिंसा का रूप अख्तियार करता है तथा मानव सभ्यता के विकास की राह पर गतिरोध पैदा करता है।

मानव सभ्यता ने फासीवाद के असली स्वरूप को पहचान लिया। इसलिए फासीवाद को परास्त होना पड़ा, जिसके आज 65 साल हुए हैं। रजनीपाम दत्त ने बहुत पहले ही कहा था कि यदि फासीवाद के संबंध में धारणा स्पष्ट होगी, तो उसे परास्त करना कठिन नहीं होगा। फासीवाद के खिलाफ संघर्ष करने की मुख्य जिम्मेदारी मजदूर वर्ग तथा कम्युनिस्ट पार्टियों की है। 1945 में कम्युनिस्ट अंतर्राष्ट्रीय के सातवें सम्मेलन में जार्ज दिमितोव ने 'संयुक्तमोर्चे की थीसिस' प्रस्तुत की। 1936 में दत्त-ब्राडली का दस्तावेज आया, जिसके अनुसार

सामाज्यवाद विरोधी जनमोर्चा बनाने की पहल शुरू हुई। लेकिन फासीवाद के खिलाफ सच को स्थापित करना कठिन था। खासकर वर्साय समझौता के बाद फासीवाद के विरुद्ध स्पष्ट धारणा व्यक्त करने के सिलसिले में कई तरह की भ्रांतियां काम कर रही थीं। क्षतिग्रस्त देशों में जो उग्र राष्ट्रीयतावाद काम कर रहा था, उसके प्रति भी कहीं-कहीं हमदर्दी देखी जा रही थी। और दूसरी ओर प्रचार माध्यम के जरिये लगातार विभ्रांति फैलायी जा रही थी। 1922 में मुसोलिनी के नेतृत्व में फासिस्टों ने इटली की सत्ता पर कब्जा जमाया। 1933 में जर्मनी में यहूदी-विरोधी, कम्युनिस्ट-विरोधी, विदेश-विरोधी, गणतंत्र-विरोधी और वर्साय समझौता विरोधी यहां तक कि पूंजीवाद विरोधी घोषणाओं के जरिये हिटलर सत्ता पर काबिज हुआ। स्पेन और जापान में भी युद्धबाजों का बोलबाला बढ़ गया। पूरे यूरोप में फासीवाद का आतंक फैल गया। धीरे-धीरे हिटलर ने पूरी दुनिया को ग्रास करने की रणनीति बनाने की चेष्टा शुरू की।

ऐसी स्थिति में लेखक-वैज्ञानिक साहित्यकारों को सामने आना पड़ा। अंधराष्ट्रीयतावाद, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद के विरुद्ध यूरोप, अमेरिका, एशिया के प्रायः सभी देशों में लेखक-कलाकार एकजुट होने लगे। फ्रांसीसी लेखकों के संगठन 'क्लार्ते' ने मार्टिन, आनातोल फ्रांस, पॉल कुतुर आदि प्रमुख लेखकों को एकजुट कर साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ जनमत तैयार करने का काम शुरू किया। अरी बारबूस ने उसका नेतृत्व किया था। रोमां रोला भी उसमें शामिल हुए। दुनिया भर में साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ शांति कायम करने के लिए प्रयास जारी हुआ। भारत में इसे पूरी करने की जिम्मेदारी रवीन्द्रनाथ ने पूरी की। 1927 में ब्रासलेस शहर में साम्राज्यवाद के खिलाफ महासम्मेलन हुआ। अरी बारबूस ने उस महासम्मेलन का उद्‌घाटन किया। 1928 में रोमां रोला तथा बारबूस के संपादन में एक संकलन प्रकाशित हुआ। उस संकलन में रवीन्द्रनाथ का भी आलेख अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ। उस संकलन का शीर्षक था- 'गोल्डेन बुक ऑफ पीस।' 1932 में बारबूस और रोमां रोला ने विश्वशांति सम्मेलन का आह्वान किया। उस विश्व शांतिसम्मेलन के लिए रवीन्द्रनाथ ने संदेश भेजा था। 1923 में

Scanned with CamScanner

फासीवाद के खिलाफ लेखक-बुद्धिजीवी-कलाकारों का आंदोलन तेज हुआ था। इसी साल जर्मनी में हिटलर सत्ता पर काबिज हो गया था। इस खबर के आने के साथ-साथ पूरी दुनिया के लेखकों-कलाकारों के बीच फासीवाद के जर्मनी संस्करण के प्रति चिंता बढ़ गयी।

सन् 1933 में रोमां रोला की अध्यक्षता में 'फासीवाद-विरोधी अंतर्राष्ट्रीय कमेटी' का गठन हुआ। जर्मनी में फासीवाद की स्थापना होते ही हजारों-हजार लेखक-बुद्धिजीवी-कलाकार-वैज्ञानिकों को विताड़ित करने का खेल शुरू हुआ। आइनस्टाईन के नेतृत्व में वैज्ञानिकों ने फासीवाद के खिलाफ प्रचार अभियान आरम्भ किया। प्रचार अभियान तेज करना जरूरी हो गया था, क्योंकि जर्मन फासिस्टों ने जिन किताबों को जलाया, उन किताबों में स्टालिन, गोर्की, बारबूस ने 1935 में पेरिस में एक शांति सम्मेलन का आह्वान किया। उस सम्मेलन में आंद्रे जिद, ई एम फास्टर, आंद्रे मालरों, अलडूस हाकसली, माईकल गोल्ड, जन स्ट्राची ने हिस्सा लिया। 1935 के नवम्बर में पेरिस में फिर शांति महासम्मेलन हुआ। लेकिन बारबूस की आकस्मिक मृत्यु होने के बाद वह सम्मेलन 1936 में हुआ। भारतीय प्रगति लेखक संघ की ओर से रवीन्द्रनाथ, शरत्चंद, नंदलाल बसु, प्रमथ चौधुरी, प्रफुल्ल राय ने उस सम्मेलन का अभिनंदन करते हुए एक पत्र लिखा था। उसके तुरंत बाद रवीन्द्रनाथ की अध्यक्षता में 'लीग अगेंस्ट फासिज्म एंड वार' की भारतीय शाखा का गठन हुआ। स्पेन में जब फासिस्टों का उत्थान हुआ, तब रवीन्द्रनाथ ने लाखों कंठस्वर से प्रतिक्रिया को दूर करने का आह्वान किया; लाखों-लाख लोगों से जनतंत्र, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करने की अपील की। जापान ने चीन पर हमला किया। इस हमले की निन्दा करते हुए चीन की जनता की मदद करने के लिए अर्थ संग्रह अभियान किया गया। रवीन्द्रनाथ ने उस अर्थ संग्रह में मुक्त हाथ से दान देते हुए लोगों से गुजारिश की कि चीन की जनता को राहत देने के लिए अर्थ संग्रह में हिस्सा लें।

द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने के साथ-साथ रवीन्द्रनाथ ने आम जनता से युद्धबाजों के खिलाफ लड़ने का आह्वान किया। जर्मन फासिस्टों ने 1 सितम्बर 1939 में पोलैंड पर हमला किया और इसी हमले के जरिये द्वितीय विश्वयुद्ध का सूत्रपात

हुआ। उस वक्त 'युद्ध और भारत के कर्त्तव्य' शीर्षक से बयान जारी किया गया। रवीन्द्रनाथ, प्रफुल्ल चंद्र राय, रमानंद चट्टोपाध्याय, डा. नीलरत्न सरकार, श्यामा प्रसाद मुखोपाध्याय, हीरेन्द्रनाथ दत्त ने युद्ध का विरोध करते हुए लेखक-कलाकारों के कर्त्तव्य पर रोशनी डाली। 1940 में रवीन्द्रनाथ ने अमेरिकी प्रेसीडेंट रूजवेल्ट को जर्मनी के विरुद्ध द्वितीय फ्रंट खोलने का आह्वान किया। अमेरिकी प्रेसीडेंट ने उस पर ध्यान नहीं दिया। फासीवाद का वीभत्स रूप धीरे-धीरे और उजागर होता रहा। कोई इस रूप को देखे, तो उसके रोंगटे खड़े हो जायेंगे।

जर्मन फासिस्टों ने स्वतंत्र विचार व्यक्त करने के चलते सॉपल रन, शैन्स जैकब, देफु की हत्या की। किताबों को जलाना, पुस्तकालयों में आग लगाना, फासिस्टों की दिनचर्या बन गई थी। गीत-संगीत पर रोक लगाना, स्वतंत्र विचार व्यक्त करने वाले लेखकों को गिरफ्तार करना, उन्हें अवहेलित करना फासिस्टों की प्रमुख कार्यशैली बन गई थी। उल्लेखनीय है कि फासिस्टों के विरुद्ध लड़ने के चलते कवि फेदेरिका गार्सिया लोरका, गायक पाटलो फैसल्स, चित्रकार फेलिसिया ब्राउन, साहित्यकार क्रिस्टॉफर कॉडवेल जैसे प्रमुख रचनाकारों को रणक्षेत्र में प्राण देना पड़ा। उनकी शहादत ने रवीन्द्रनाथ को मर्माहत किया। उन्होंने कहा- 'फासीवाद की इस वाढ़ को रोकना ही पड़ेगा।' फासिस्टों ने महान वैज्ञानिक आइनस्टाईन के भौतिकी चिंतन, फ्रायड के मनोविश्लेषण, मेरेडिथ, टाम्स हार्डी, कैथरीन मैनफिल्ड, वार्जिनिया उल्फ, हेनरी जेम्स, फफनार जैसे लेखकों की पुस्तकों के पुनर्मुद्रण पर रोक लगायी। फासिस्टों ने कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र 'लूमानीत' के विदेशी विभाग के संपादक तथा संसद सदस्य गेरियल की हत्या की। महान दार्शनिक तथा इटली के कम्युनिस्ट नेता आंतनियो ग्राम्सी की हत्या हुई। जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी के नेता आर्नेस्ट थेलमैन की हत्या की गयी। इस तरह अनेकानेक विवेकवानों की हत्या करने का रिकार्ड फासिस्टों ने तैयार किया। फासिस्टों की पराजय से यह बात सच हो गयी कि मानव सभ्यता की विकासधारा को हत्या-हिंसा के जरिये नहीं रोका जा सकता है तथा लेखकों के विचार को हथियार से नहीं दबाया जा सकता है।

Scanned with CamScanner

रवीन्द्रनाथ की रचनाएं शांति, जनतंत्र, मानवता, मानव कल्याण की पूर्ण विजय की अभिव्यक्ति हैं। मानव पर भरोसा करना उनकी रचनाओं की धुरी है। उनकी लेखनी ने संग्राम में जीत हासिल करने की कार्य कुशलता पर रोशनी डाली है। लाख अभावों-असुविधाओं के बाद नूद संघर्ष-पथ पर आगे बढ़ने का पाथेय रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में उपलब्ध है। इस उपलब्धि को जन-जन तक पहुंचाना ही फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष करने की असली ताकत है। कर्त्तव्य परायणता की शिक्षा रवीन्द्रनाथ के साहित्य का मुख्य विषय है। फासीवाद विरोधी रवीन्द्रनाथ की साम्राज्यवाद चेतना उन तमाम लोगों को दिशा देती है, जो विभ्रांत हो उठते हैं, उन तमाम लोगों को आगे बढ़ने की शक्ति देती है, जो संघर्ष पथ पर चलते-चलते थक जाते हैं। जब-जब शुभ शक्तियां आक्रांत होती हैं, तब-तब रवि ठाकुर की वाणी उन्हें सुकून देती है। रवीन्द्रनाथ मानव सभ्यता की विकासधारा के संग्राम स्रष्टा हैं। इसलिए साम्राज्यवाद-फासीवाद विरोधी आंदोलन में उनके अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके चिंतन गहन अंधेरे में भी हमें सदा रोशन करते रहेंगे। सही अर्थों में संघर्षशील जनता के हाथों में जय-शंख और विजय-ध्वज का नाम रवीन्द्रनाथ है। जब तक यह जय-शंख और विजय-ध्वज जनशक्ति के प्रहरियों के हाथ में हैं तब तक साम्राज्यवाद-फासीवाद या उसके पिछलगू विकास की धारा को नहीं रोक सकते हैं। यदि उस विकासधारा को रोकने की कोशिश की, तो उसका हश्र भी ठीक हिटलर की तरह होना है, जिसने लाल झंडे का अंत करने की कोशिश की थी। मेहनतकशों की एकता को और मजबूत करते हुए इस दुनिया को एक सुंदर- साम्य रहने वाली दुनिया में बदलने वालों को रवीन्द्रनाथ हमेशा यही शिक्षा देते रहेंगे कि जो डरता है वही डर को जिंदा बनाये रखता है। रवीन्द्रनाथ की 150वीं सालगिरह तथा फासीवाद की पराजय के 65 साल पर हमें सभी तरह के भय से मुक्त होने का संकल्प लेना होगा तभी जाकर हम साम्राज्यवाद-फासीवाद के विरुद्ध रवीन्द्रनाथ के अवदान को सही अर्थों में समझ सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. सेन, शचीन्द्रनाथ- 'दि पोलिटिकल फिलासफी आफ रवीन्द्रनाथ' नरखणे, विश्वनाथ, रवीन्द्रनाथ के निबंध, भाग-1, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, 1964, पृ. 508
2. नागार्जुन- 'रवि ठाकुर', सं. शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली भाग-1, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृ. 30
3. विजेन्द्र, सौन्दर्यशास्त्र : भारतीय चित्र और कविता, अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 1-2
4. शर्मा, डॉ. रमाकांत, 'प्रतिश्रुति'-अंक 39, जोधपुर, जुलाई-सितम्बर 2010, पृ. 5
5. जाफरी, अली सरदार, कबीर बानी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998, पृ. 96
6. जाफरी, अली सरदार, कबीर बानी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998, पृ. 96
7. भट्टाचार्य, बुद्धदेव, 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जनपक्षधरता', 'स्वाधीनता'-नवम्बर क्रांति विशेषांक- अंक 45, कोलकाता, 2010, पृ. 3
8. सरकार, पवित्र, जीवन, मृत्यु : रवीन्द्रनाथ 'गणशक्ति' अंक 9 मई 2010, स. दत्ता, नारायण, कोलकाता, पृ. 12
9. सरकार, पवित्र, जीवन, मृत्यु : रवीन्द्रनाथ 'गणशक्ति' अंक 9 मई 2010, स. दत्ता, नारायण, कोलकाता, पृ. 13
10. भट्टाचार्य, बुद्धदेव, 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जनपक्षधरता', 'स्वाधीनता'-नवम्बर क्रांति विशेषांक- अंक 45, कोलकाता, 2010, पृ. 3
11. वाजपेयी, नन्ददुलारे, हिन्दी साहित्य रचना और विचार, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ. 17

Scanned with CamScanner

12. चट्टोपाध्याय, अनुनय 'राष्ट्रशक्ति और जनशक्ति : रवीन्द्रनाथ', स्वाधीनता शारदीय विशेषांक 2010, कोलकाता, पृ. 103
13. चक्रवर्ती, शुभंकर 'फासीवाद विरोधी रवीन्द्रनाथ', दक्षिण 24 परगना जिला कृषक समिति, कोलकाता, पृ. 11
14. चक्रवर्ती, शुभंकर 'फासीवाद विरोधी रवीन्द्रनाथ', दक्षिण 24 परगना जिला कृषक समिति, कोलकाता, पृ. 11
15. बंद्योपाध्याय, इन्द्रनाथ, 'फासीवाद विरोधी रवीन्द्रनाथ- फिरे देखा, सामने देखा', सं. दे, तमाल, 'अतन्दिला' शारद संख्या, 2010, जलपाईगुड़ी, पृ. 6

फ़ैज़ की संवेदना

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ एक महान कवि हैं, उनका स्वप्न महान है। हाल ही में उनकी जन्मशती के मौके पर उनके काव्य-सृजन पर विभिन्न तरह से आलोकपात किया गया। इससे एक बात उभरकर सामने आयी कि फ़ैज़ ने अपनी लेखनी के जरिये मुर्दों में जान फूंकने की कोशिश की है। एक स्वप्न को उन्होंने हकीकत में बदलने का प्रयत्न किया। यही वजह है कि उन्होंने 'नक्शे- फरियादी', 'दस्ते-सबा', 'जिन्दांनामा', 'दस्ते-तहे- संग', 'सरे-वादिए-सीना', 'शामे- शहरे-यारां' जैसे महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ लिखे। साथ ही, 'मताए- लौहो-कलम' जैसा संग्रह प्रस्तुत किया जिसमें लेख, भाषण, भूमिकाएं, पत्र और रेडियो व टेलीविजन की वार्ताएं संगृहित हैं। उन्होंने 'पाकिस्तान टाइम्स' और 'इमरोज' जैसे अखबारों का सम्पादन किया। 'मीज़ान' उनके लेखों का संग्रह है। जेल में उन्होंने जो पत्र लिखे, वे सभी पत्र 'सलीबें मेरे दरीचे में' संगृहित हैं। एफो- एशियाई लेखक संघ के मुखपत्र 'लोटस' का भी उन्होंने सम्पादन किया।

वैश्वीकरण के इस दौर में फ़ैज़ की याद जरूरी हो गयी है क्योंकि जिन कारणों से आज विश्व आक्रांत है, उन कारणों के जन्मदाताओं से फ़ैज़ ने अपने जीवनकाल में सीधा मुठभेड़ किया था तथा उन्हें सही रास्ता दिखाया था। फ़ैज़ के संघर्ष व्यापक हैं। आज उन अनुभवों से शिक्षा लेकर आगे बढ़ने की आवश्यकता है, तभी जाकर इस दुनिया को विभिन्न तरह के हमलों से बचाया जा सकता है। फ़ैज़ ने बहुत दिन पहले ही बता दिया था कि बढ़ना है तो कटना ही होगा क्योंकि कटनेवालों की अग्रगति को कोई रोक नहीं सकता है। जिस शक्ति

Scanned with CamScanner

ार प्रस्तुत करते हुए आकांक्षा की दुनिया में चौथे
कताओं और उसके सामने प्रस्तुत चुनौतियों का
इस पुस्तक में अपेक्षित है। साथ ही; हिन्दी भाषा
पड़ावों को पार करते हुए लोकतंत्र और मीडिया
स तरह की भूमिका अदा की है, इस मसले पर
ा है।

ऊर्जावान नहीं बन पाता है, जब तक कि उसे पाठकों
ले। इस पुस्तक में प्रस्तुत विचार को अग्रगति की
ढ़ाने के लिए पाठकों की शुभकामनाएं अपेक्षित है।
तैयार करने में जिन लोगों ने सहयोग किया, उनके
तज्ञता ज्ञापित करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है,
च जरूर है कि उनके सहयोग के बिना यह पुस्तक
होती। हर तरह के सहयोग के लिए धन्यवाद। इस
ांकन आप करेंगे, इसी उम्मीद के साथ...

डॉ. राम आह्लाद चौधरी

अनुक्रम

1. लोकतंत्र और मीडिया की भाषा 1-24
2. लोकतंत्र और वैकल्पिक मीडिया 25-54
3. लोकतांत्रिक प्रक्रिया के सपने 55-88
4. लोकतंत्र के समक्ष विमर्श का तूफान 89-122
5. आकांक्षा की दुनिया में चौथा स्तम्भ 123-152
6. चौथे खम्भे की चुनौतियां 153-184
7. वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी की भूमिका 185-216

Scanned with CamScanner

ाम कश्यप ने इस बहस को एक नया आयाम दिया है। उनका यह एक तरह से विकास का पड़ाव है। इस पड़ाव के चलते बदलाव के बिन्दु सामने आते हैं। सामाजिक सरोकारों को जोड़ने की कोशिश करते हुए उन्होंने लिखा है—...कार्यक्रमों में वजह से या उनकी दिशा सही न होने के कारण, उनसे वांछित मिल पाये। मगर कई तरह की सीमाओं के बावजूद, दूरदर्शन का । उसे विकास के लिए काम करना था, व्यवसाय या धंधा नहीं। की कल्पना में यह ख़याल दूर-दूर तक नहीं था कि भविष्य में ामाजिक सरोकारों को छोड़कर वह बाजारवाद की राह पर चल न के विकास और उसकी दिशा को सुनिश्चित करने के लिए की रिपोर्टें भी यही कहती हैं कि दूरदर्शन की भूमिका देश के बद्ध है।[50] विमर्श यदि विकास को आगे नहीं बढ़ाता है, तो संकट स्वाभाविक है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया के जरिये विकास संभव है, को अवरुद्ध करने के लिये विमर्श का तूफान पैदा किया जाता माज के लिये घातक है। मीडिया इससे लड़ता है। इस संघर्ष के होता है।

ω ω

.....

श्याम, कुमार मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 2008, पृ. 160

आकांक्षा की दुनिया में चौथा खम्भा

बाजार का वर्चस्व ही नहीं बल्कि उसका दापट भी बढ़ रहा है। उसकी चपेट में धीरे-धीरे सब कुछ आ रहा है। बाजार पर प्रभुओं का वर्चस्व है। इस वर्चस्व की जांच जरूरी है। कौन इसकी जांच करेगा? बाजार का हौआ खड़ा हो चुका है। उस पर चोट करने की ताकत बहुत कम लोगों में है। फिर भी मीडिया में प्रतिवाद की ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है। मूल्यों की रक्षा करने वालों की जमात धीरे-धीरे अपने विवेक के साथ बढ़ रही है। यही कारण है कि बाजार की चमक दूर से नजर आ रही है। इस संदर्भ में हिन्दी के कवि कुंवर नारायण की पंक्तियों को उद्धृत करना अनुचित नहीं होगा। प्रस्तुत हैं पंक्तियां : 'बाजार में दूर ही से/ कुछ चमकता तो है-/ हो सकता है सोना/ हो सकता है पालिश/ हो सकता है कांच.../ जरूरी है पक्की जांच/'

कुंवर नारायण ने ठीक ही कहा है कि यदि जांच न की जाय तो हो सकता है कि उसमें जान न हो। जैसे हवा रहित-पानी रहित जीवन नहीं हो सकता है ठीक उसी तरह अखबार रहित न समाज हो सकता है और न ही सरकार। एक सरकार को संचालित करने के लिए बुद्धि-विवेक से अधिक जरूरी है-एक अखबार। यदि अखबार अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को नहीं स्थापित करता है तो यही समझना चाहिए कि उसकी बुनियाद में कहीं कोई गड़बड़ी

Scanned with CamScanner

है। इस अभिव्यक्ति का सामाजिक सरोकार होता है। इस सरोकार की रक्षा होने से जनमत तैयार होता है।

पूरा समाज यह समझ पाता है कि अग्रगति की दिशा क्या है ? इस दिशा को सुनिश्चित करने के लिए मेहनतकशों को केन्द्र में रखना ही प्राथमिक पहल है, क्योंकि समाज के शोषित-दमित-दलितों को आगे बढ़ने की आजादी नहीं दी जायेगी, तो समाज का एकांगी विकास होगा। इस विकास को बड़े पैमाने पर रेखांकित करना उचित है। यह सच है कि वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था समाज के उसी हिस्से को विकसित करना चाहती है, जो हिस्सा आगे है। इसलिए इस व्यवस्था को बदलने की बार-बार लड़ाई की जाती है तथा एक वृहत्तर मांग को सामने रखते हुए आन्दोलन किया जाता है। इस आन्दोलन की सफलता दिखती है, जो दूरगामी प्रभाव तैयार करती है। यही मानव समाज की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति को रोकना समाज को ध्वस्त करना है। जनतंत्र के चौथे खम्भे की यह जिम्मेदारी है कि अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की रक्षा कैसे की जाय ?

भारत की धरती पर अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का संघर्ष सबसे तेज रहा है। उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष करने में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रमुख भूमिका होती है। सरकार हर वक्त चाहती है कि जन आकांक्षाओं को दबाया जाय। सिर्फ वह अपना प्रचार चाहती है। ब्रिटिश जमाने में भी यही हाल रहा है। उल्लेखनीय है कि भारत की धरती पर मुद्रित समाचार पत्रों का युग सन् 1780 से शुरू होता है। इस युग ने लेखन की दुनिया में क्रांतिकारी परिवर्तन को स्थापित किया। इस क्रांतिकारी परिवर्तन ने नये-नये अनुभवों को केन्द्रित

किया तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक तरह से खुलकर आन्दोलन संगठित करने का आह्वान किया। इसलिए धीरे-धीरे आवाज गूंजने लगी तथा प्रथम स्वाधीनता संग्राम भी प्रभावशाली बन पाया। इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि जन आकांक्षाओं की परिधि जब बढ़ रही थी, तब कम्पनी चुपचाप बैठी हुई थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जैसे यह अहसास हुआ कि भारतवासी बोलने के साथ-साथ लिखने भी लगे हैं तो उसका माथा ठनका और उसने कानून बनाया।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार ने सन् 1785 में एक आदेश जारी किया। उस आदेश में खबरों को प्रकाशित करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य या प्रेस की स्वाधीनता पर पाबंदी लगाने का यह पहला सरकारी प्रतिबंध है। इसी साल 'मद्रास गजट' अखबार पर भी सेंसरशिप लगायी गयी। सेंसरशिप का दौर लगातार बढ़ता गया। 13 मई 1799 में गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली ने 'स्टेच्यूटी रेगुलेशंस' जारी करते हुए समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया। ऐसे-ऐसे नियम-कानून पत्र-पत्रिकाओं और सम्पादकों पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से थोपे जाने लगे कि अखबार निकालना ही मुश्किल हो गया था। महसूस होने लगा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार लेखकों के हाथों से कलम छीन लेगी। 1801 ई. में 'कोलकाता गजट' को निर्देश दिया गया कि सेना के आदेशों और उससे सम्बन्धित तथ्यों को नहीं छापा जायेगा। उस समय; जब अंग्रेजों और मराठों का दूसरा युद्ध शुरू हो गया, तब उस सरकार ने कहा कि जहाजों के आने-जाने की खबरें नहीं छपनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

सर जार्ज बार्लो का जमाना हो या लार्ड मिंटों का, हर वक्त अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के सामने तलवार लटक रही थी। सन् 1807 में कम्पनी के इलाकों में आम सभा करने पर भी रोक लगा दी गयी। लार्ड मिंटो ने 1811 ई. में प्रेस द्वारा मुद्रित सामग्री पर मुद्रक का नाम छापना अनिवार्य कर दिया। लार्ड हेस्टिंग्स ने भी अपने समय में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य या प्रेस की आजादी पर रोक लगाने की कम कोशिशें नहीं की। लार्ड हेस्टिंग्स ने समाचार पत्रों के साथ-साथ किताबों को भी सेंसरशिप के दायरे में लाया। उस जमाने में इसका कड़ा विरोध हुआ था। प्रतिबंध हटाने के लिए लार्ड हेस्टिंग्स को ज्ञापन भी दिया गया था। पर एक तरह से प्रतिबंध को और कड़ा कर दिया गया। प्रतिबंधों का नया-नया सिलसिला 1818-1823 ई. के बीच चला। सन् 1823 में प्रेस आर्डिनेन्स जारी किया गया। इसके जरिये अखबारों पर लाइसेंसिंग प्रणाली लागू कर दी गयी इसके विरुद्ध जोरदार संघर्ष किया गया।

राजा राममोहन राय, द्वारकानाथ टैगोर और गौरी चरण बनर्जी ने इस आर्डिनेन्स का विरोध किया। उन्होंने प्रिवी काउंसिल में अपील की, लेकिन ब्रितानी साम्राज्यवादियों ने उनकी अपील की अनसुनी की। लेकिन अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के पक्ष में आन्दोलन करनेवालों का संघर्ष रुका नहीं, बल्कि वह आन्दोलन बढ़ता गया। इसलिए 1835 ई. में चार्ल्स मेटकाफ को मजबूर होकर प्रेस के कानून में परिवर्तन करना पड़ा। यह मेटकाफ कानून प्रेस पर 1835 से 1857 तक लागू रहा। सन् 1857 के महासंग्राम के समय जनमानस की आवाज के सामने उस कानून को लुंजपुंज होते देखा गया। वैसे 1857 के महाविद्रोह के वक्त लार्ड केनिंग गवर्नर जनरल थे। फिर भी उस पहली स्वाधीनता लड़ाई में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य ने अलख जगाने का काम किया। भारतवासियों ने

पूरी ताकतों के साथ अपनी आकांक्षाओं को वाणी दी। इस वाणी ने उनकी अभिव्यक्ति को नयी चेतना दी। इसी चेतना के चलते राष्ट्रप्रेमियों को नयी ऊर्जा मिली; जिसने वतन प्रेमियों को वतन के लिए मर मिटने की प्रेरणा दी।

■ नयी रोशनी

नयी रोशनी नया समाज बनाती है, जो आकांक्षा युक्त अभिव्यक्ति से संभव है। दरअसल अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य एक तरह से आकांक्षा की अभिव्यक्ति है। इसके ज़रिये समाज अपनी बुद्धिमत्ता को जीवित रखकर आगे बढ़ता है। जिस समाज में आकांक्षाओं को जिस रूप में प्रकट किया जाता है, उसी रूप में उस समाज का विकास होता है। संघर्ष एक तरह से विवेक की पटरी पर चलता है। इसके लिए विचारधारा की जरूरत होती है, यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है। यह तभी संभव है, जब न जुबानों पर पाबंदी हो और न फैसलों पर हथकड़ी हो।

बीसवीं शताब्दी के संघर्षों को कमतर बतलाते हुए आगे का स्वप्न देखना गलत होगा। साथ ही, इस शताब्दी के संघर्षों का मूल्यांकन करने के लिए मनमाने ढंग से मानदण्ड तैयार करना भी अनुचित होगा। पर एक बात सच है कि पूरे विश्व में विगत बीसवीं शताब्दी में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए जोरदार संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में समाज के प्राय: सभी स्तर के लोगों ने हिस्सा लिया। खासकर किसी घटना के विश्लेषण और उसकी प्रतिक्रिया के तौर पर सम्पादकों की भूमिका सराहनीय रही है।

सिर्फ बीसवीं शताब्दी में ही उनकी भूमिका सराहनीय रही हो ऐसी बात नहीं है। इससे पहले भी समाज के उत्थान के लिए सम्पादकों की भूमिका

Scanned with CamScanner

निर्णायक साबित हुई है। इस तरह की भूमिकाओं पर प्रश्न भी उठाये गये हैं। सच को विकृत भी किया गया। न्याय मांगने या दिलाने के नाम पर तथ्यों को तोड़ा गया। झूठ को अर्द्ध सत्य से दबाया गया, तो कभी अर्द्ध सत्य को झूठ करार दिया गया। लेकिन एक प्रश्न पर प्राय: सभी संघर्षशील व्यक्ति उस समय सहमत थे कि किसी कीमत पर देश को आजादी मिले तथा कहने की छूट मिले यानी अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार मिले। इस अधिकार को अर्जित करने में समाज को काफी संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष ने आजादी की लड़ाई को एक तेवर भी दिया। प्रेस कानून बनने के साथ-साथ अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का सवाल सामने आया।

कई आलोचकों ने जीवन की विकास-धारा को देखकर कई तरह की आलोचनाएं की हैं। हालांकि उन आलोचनाओं को प्रवृत्तिपरक आलोचना ही कहना उचित है। उन आलोचकों के तथ्यों पर कान लगाने से यही समझ में आता है कि बनती-बिगड़ती नव विश्व व्यवस्था, असंतोष के तत्व, अस्थिरता की स्थिति, टकरावों के चलते उत्पन्न मतांतर, विजय के मिथक, उदारीकरण की प्रक्रिया, पूंजीवाद का वीभत्स रूप ने सामाजिक जीवन के भावी स्वरूप को बिगाड़ दिया है। दूर तलक यह बात नजर नहीं आ रही है कि चंद दशकों के बाद भी जीवन उन्नत और शांत बन पायेगा, क्योंकि सामाजिक स्तर पर अस्थिरता का जन्म हो गया है। इसने जीवन को भोग-विलास की ओर उन्मुख किया है। ऐसी स्थिति में बीसवीं सदी की उन तमाम विचारधाराओं को फिर से पूरी तन्मयता के साथ देखने की जरूरत है, जिन विचारधाराओं के बल पर समाज यानी इस दुनिया को स्थिर करने के लिए अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का संघर्ष तेज किया गया था। इस संघर्ष का मूल्यांकन आलोचकों ने अपने-अपने

ढंग से किया है। इस बारे में ग्रेब्रियल गार्सिया मार्क्वीज ने बिल्कुल सही कहा है कि बीसवीं सदी की विचारधाराएं पूरी तरह विलीन हो जायेंगी। यह एक सड़ी-गली सदी रही है। यह सदी एक से एक मतांधों से भरी रही है जिन्होंने एक के बाद एक हमारे समय को बरबाद किया और कष्ट पहुंचाये, अन्याय किया।

मार्क्वीज की इन बातों से यही महसूस होता है कि 21वीं सदी भी शायद इसी तरह हो, क्योंकि इस सदी के एक दशक गुजरने के बाद सामाजिक-आर्थिक जीवन में भयानक तबाही छा गयी है। आज जहां इस तबाही-बर्बादी को रोकने की आवश्यकता है, जिसके लिए एक विकल्प तैयार करना वक्त का तकाजा है। वहीं इस ओर ध्यान न देकर अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर कुठाराघात कर कुछ लोग इतिहास पुरुष बनना चाहते हैं, जो असंभव है। प्रतिवाद-प्रतिरोध ही विकल्प को जन्म देता है तथा भविष्य का सही निर्माता है। इस विकल्प से तबाही-बर्बादी एक हद तक दूर हो सकती है। इसके लिए भी ईमानदारी की जरूरत होती है।

अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य में ईमानदारी के तत्त्व विलुप्त होने से संकट पैदा होना स्वाभाविक है। इसलिए यह देखने की आवश्यकता है कि नव उदारीकरण के चलते जो परेशानी बढ़ रही है, उसका सही इलाज हो। हाशिये के लोगों को बचाने के लिए मीडिया को अग्रणी भूमिका निभाने के लिए बढ़-चढ़कर आगे आना होगा। सिर्फ बाजार का सर्वे करने के नाम पर सनसनीखेज खबरों को प्रस्तुत करने से अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की रक्षा नहीं हो पायेगी। इसके लिए नये सिरे से समाज को तैयार करना पड़ेगा। धीरे-धीरे मीडिया उन तमाम

Scanned with CamScanner

संघर्षशील व्यक्तियों-संस्थानों-संगठनों को अपनी चपेट में लेने लगा है, जिनके भरोसे समाज की चहुंमुखी उन्नति की उम्मीद अभी भी समाज के व्यापक हिस्सों में उस तरह लगी है जैसे सीप को स्वाति नक्षत्र का इंतजार होता है। स्थिति विकट हो या विकटतम-झेलना आम आदमी को पड़ता है। शायद इसी को झेलते-झेलते उसे काम लायक अनुभव प्राप्त हो जाता है कि वह अपनी आकांक्षाओं को वाणी देने का जोखिम उठा लेता है। यदि यह जोखिम मानव-सभ्यता नहीं उठाती, तो आज वह जहां पहुंची है, वहां नहीं पहुंच पाती।

इस तरह जोखिम उठाने के पीछे चाहे जो कारण रहा हो, लेकिन पूरी तरह सफल होने की मानसिकता तो नहीं रही होगी, क्योंकि इस मानसिकता से चाहे जो हो संघर्ष नहीं हो सकता। अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए हर समय जोखिम उठाना पड़ेगा, तभी जाकर बंद मुट्ठियां तन सकती हैं। अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य ने विगत सदियों में अपना जलवा दिखाया है और आनेवाली सदियों में भी अपना मुकाम तय करेगा, उतार-चढ़ाव तो जीवन का सफर है। इस सफर पर ध्यान केन्द्रित करने से यही लगता है कि सामाजिक अस्थिरता और राजनीतिक भूचाल के जरिये तबाही और बर्बादी बढ़ रही है। किसानों-मजदूरों सहित उभरते मध्य वर्ग की इच्छा-आकांक्षाओं को सिर्फ झूठे आश्वासनों के जरिये नहीं बचाया जा सकता है। उन आकांक्षाओं को फलीभूत करने के लिए ठोस हस्तक्षेप करने और कारगर भूमिका निभाने से उनकी आकांक्षाओं की रक्षा करना संभव हो सकता है, इसके लिए अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को पूरी ईमानदारी के साथ रक्षा करने की पहल करनी होगी। आखिरकार अभिव्यक्ति ही समाज को बचाती है। इसके माध्यम से जीवन और संघर्ष का संपादन होता है। इसी सम्पादन के जरिये वतन को नयी जिन्दगी मिलती है। गोरख पांडेय के शब्दों

में : ''हमारे वतन की नयी जिन्दगी हो/ नयी जिन्दगी एक मुकम्मल खुशी हो/ नया हो गुलिस्तां नयी बुलबुलें हो/ मुहब्बत की कोई नयी रागनी हो/''

■ चिंगारी पर पैर

खबरों का सेंसर हमेशा हुआ है, इसके बावजूद सेंसर की खबरें ही प्रमुख हो जाती हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि हुकूमत जनता की वाणी को नहीं दबा पाती है। ब्रितानी राज में भी यही देखा गया था। प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के समय अलख जगाया जा रहा था, पर यह एक कठिन काम था। ब्रितानी हुकूमत अपनी क्रूर आंखों और प्रभुदित कानों से देशभक्तों को अपमानित कर रही थी। लेकिन उस समय भी तथाकथित समाचार-पत्रों के लिए यह सब केवल एक समाचार था। इस तथ्य को राकेश श्रीमाल की इन पंक्तियों में भी देखा जा सकता है। यथा : ''सह देख सुन रहे हैं/ अपनी क्रूर आंखों और प्रमुदित कानों से/ कोई असम्मानित कर रहा है अपनी मुस्कराहट/ कोई जान रहा है केवल समाचार।''

समाज के प्रभुओं ने सदा से देशभक्त की हर बात को देशद्रोह ठहराने की कोशिश की है। प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के समय असंख्य पत्र-पत्रिकाओं सहित समाचार-पत्रों को प्रतिबंधित कर दिया गया था।

'समाचार सुधावर्षण' में बहादुर शाह जफर का संदेश छपा। कारणवश उस पर मुकदमा चलाया गया। महान देशभक्त श्याम सुन्दर सेन, द्वारकानाथ टैगोर को अंग्रेजों का कोपभाजन बनना पड़ा। बेंगाल हरकारू, सुल्तान-उल-अखबार और दूरबीन फ्रेण्ड आफ इण्डिया जैसे प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं को

Scanned with CamScanner

प्रतिबंधित किया गया। गवर्नर जनरल की तरफ से यह बताने की कोशिश की जा रही थी कि पूरे भारत में देशद्रोह चल रहा है, जबकि सच्चे अर्थों में देशभक्ति की भावनाओं की लहरें उठ रही थीं। आन्दोलन की अभिव्यक्ति इसी तरह फैलती है, जैसाकि मई दिवस के पुरोधा स्पाइस ने कहा है— ''अभाव और कष्ट के बोझ के नीचे दबे लाखों मेहनतकश और जनता जिस आन्दोलन को आशा की नजर से देख रहे हैं, आप अगर यह समझते हैं कि हमलोगों को फांसी पर लटका देने से उस आन्दोलन को उखाड़ फेंकने में कामयाब होंगे तो आप हमें जरूर फांसी दे दें। ऐसा करके आप एक ऐसी चिंगारी पर पैर रखेंगे, जो आपके आगे पीछे चारों ओर धधकती ज्वाला बन जायेगी।''

इसका उदाहरण विश्व में राजनीतिक-सामाजिक स्तर पर व्याप्त है। ब्रिटिश इण्डिया के जमाने में भी अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का संघर्ष पहले की अपेक्षा अधिक व्याप्त हुआ। 1857 के बाद शासन व्यवस्था ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से ब्रिटिश सरकार के पास धीरे-धीरे पहुंच गयी। 1858 में महारानी विक्टोरिया का भारत आगमन हुआ। लार्ड केनिंग को भारत का पहला वाइसराय बनाया गया। उसी काल में 'एडीटर्स रूम' भी स्थापित किया गया। जहां प्रमुख समाचार-पत्र उपलब्ध कराये जाते थे। उस वक्त समाचार पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई। नियम-कानून बनाने के नये तरीके अपनाये गये। खासकर सरकारी कर्मचारियों को सीधे तौर पर अखबारों में लिखने पर रोक लगा दी गयी। सरकारी अनुमति के बिना कोई सरकारी कर्मचारी किसी अखबार में नहीं लिख सकता था।

सन् 1867 में 'प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स एक्ट' बनाया गया। इस एक्ट के अनुसार जुर्माना और कारावास की सजा देने की व्यवस्था को

अमली जामा पहनाया गया। 1876 ई. में लार्ड लिटन को वाइसराय और गवर्नर जनरल बनाया गया। लार्ड लिटन ने भाषाई अखबारों पर अपना निशाना साधा। उन्होंने 'वर्नाक्यूलर एक्ट' पारित किया, जिसमें कहा गया कि अखबार के खिलाफ जो कार्रवाई की जायेगी, उसे अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है। सन् 1880 में रिपन को भारत का वाइसराय बनाया गया। उन्होंने सन् 1889 में सरकारी गोपनीयता कानून बनाया, जिसके तहत सरकारी सूचनाओं और दस्तावेजों को छापने पर प्रतिबंध लगाया गया।

सन् 1903 ई. में शासकीय गोपनीयता अधिनियम पारित किया गया। सन् 1908 ई. में समाचार-पत्र (अपराधों का उकसाना) अधिनियम सन् 1908 ई. पारित हुआ। सन् 1910 ई. में 'इण्डियन प्रेस एक्ट' बनाया गया। सन् 1914 ई. में प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होने के समय 'भारत रक्षा विनियम' बनाया गया। इस विनियम के तहत समाचारों का सेंसर शुरू हुआ। सन् 1923 में शासकीय गोपनीयता अधिनियम पारित किया गया। 1931 ई. में भारतीय प्रेस कानून (आपातकालीन शक्तियां) लागू किया गया। ऐसा नहीं है कि सरकारी स्तर पर सिर्फ नियम-कानून बनाये जा रहे थे बल्कि खास-खास समाचार-पत्रों को सेंसरशिप का शिकार होना पड़ता था। कविता छापने पर भी रोक लगाने की घटनाएं सामने आयीं। इस संदर्भ में मानक सिंह हमदम का नाम लेना उचित होगा, जिनकी कविता 'फिदा-ए-वतन' शीर्षक से छपी थी। लेखक-कवियों पर राजद्रोह का आरोप लगाना मामूली बात थी। जब तब किसी की पुस्तक जब्त कर ली जाती थी। जुर्माना वसूलना सरकारी तंत्र का एक तरह से अर्थोपार्जन का साधन बन गया था।

Scanned with CamScanner

जन भावनाओं को कुचलने के लिए तरह-तरह से षड्यंत्र किया जाता था। इस बारे में जलियांवाला बाग काण्ड की चर्चा प्रासंगिक है। इस काण्ड ने पूरे देश में देशभक्ति की ज्वाला पैदा कर दी थी। लेकिन उस समय जिन सम्पादकों ने उस काण्ड के विरोध में टिप्पणी की, उन्हें दंड भुगतना पड़ा था। 'बॉम्बे क्रानिकल' के सम्पादक बेंजामिन हर्मिनान को भारत से बाहर भेजने का आदेश दिया गया। उस वक्त 350 प्रेस और 300 समाचार-पत्रों से छह लाख का जुर्माना वसूला गया था। अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को प्रतिबंधित करने के जरिये ब्रिटिश भारत में तत्कालीन सरकार ने अपने कोष को भरने का भी काम किया था। इसके बावजूद कलम के सिपाही मैदान में डटे रहे। कलम के सिपाही नैतिकता को लेकर चलते हैं। इसी नैतिकता से उनमें देश प्रेम की भावना जगती है। हर कोई राष्ट्रप्रेमी नहीं बन जाता है। राष्ट्रप्रेम की जिम्मेदारी को समझने से आगे बढ़ने का मौका मिलता है। परिस्थितियों का सही मूल्यांकन राष्ट्रप्रेमी ही करते हैं। इस मूल्यांकन का मानदण्ड अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य है। इसके लिए संघर्षरत लोगों को लामबंद करना तथा नीति-नैतिकता की पटरी पर पूरे समाज को आगे बढ़ाना अत्यन्त जरूरी है, जिसे जनतंत्र पसंद लोग ही सम्पन्न करते हैं।

उन सिपाहियों को भारी उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा। विभिन्न तरह से उन्हें लांछित होना पड़ा। संघर्ष के मैदान में अभिव्यक्ति की आजादी के लिए संघर्षरत लोगों को कुचलना शासक वर्ग के लिए आम बात है। पर संघर्ष के मैदान के सिपाही अपना हथियार नहीं डालते हैं और न शासक वर्ग के सामने आत्मसमर्पण करते हैं, क्योंकि उन्हें अच्छी तरह पता है कि अंतिम लड़ाई में देशभक्तों की जीत होती है। देशभक्तों के संघर्ष व्यर्थ नहीं जाते, इसलिए कि

अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के बिना दुनिया नहीं चल सकती है। देशभक्त स्वप्न भी देखते हैं क्योंकि उनके पास एक दृष्टि होती है, जैसाकि कवि पाश ने कहा है— ''सपनों के लिए/ नींद की नजर होनी लाजिमी है/ सपने इसलिए/ हर किसी को नहीं आते।''

आज एक विचित्र स्थिति पैदा हो गयी है। आर्थिक शोषण ने राष्ट्र प्रेम को भी दबोच लिया है। वास्तविक समस्या रोजगार की है। इस बारे में डॉ. एस. के. दुबे ने 'पत्रकारिता के नये आयाम' पुस्तक में लिखा है—नया अखबार, नया पत्रकार और नयी पत्रकारिता की यह आग क्या गुल खिलायेगी इसका आकलन भविष्य ही करेगा। नौकरियों की कमी, संविदा की मजबूरी, आर्थिक तंगी और पारिवारिक उत्तरदायित्वों के बोध के साथ अखबार मालिकों की धन लिप्सा पत्रकारों और पत्रकारिता को किस दिशा में ढकेलती है उसका निर्णय पाठक वर्ग ही करेगा।[1]

उन्होंने इसी पुस्तक में आगे लिखा है—मीडिया को इस प्रकार के समाचारों के सम्प्रेषण से बचना चाहिए जो शांति के प्रयासों, स्वतंत्रता और लोकतंत्र के विपरीत हों। इसे जन सूचना और जन उत्थान का साधन बनकर अन्याय के खिलाफ निर्णायक संघर्ष करने के लिए आमजन को उत्साहित करना चाहिए।[2] विष्णु राजगढ़िया ने मास मीडिया को समाज के साथ जोड़ते हुए लिखा है— मास मीडिया भी इसी समाज का एक अंग है। इसलिए

1 *दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 147*

2 *दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 149*

Scanned with CamScanner

मीडिया का भी समाज के अन्य अंगों, तत्त्वों के साथ परस्पर निर्भरता का संबंध है। समाज के साथ उसका व्यष्टि (माइक्रो) तथा समष्टि (मैक्रो) दोनों स्तर पर संबंध है।[3]

डॉ. श्याम कश्यप ने 'टेलीविजन की कहानी' में लिखा है कि टेलीविजन के रंगीन होने से उसका जादू समाज पर छा गया। इस जादू का लाभ उठाने के लिए विभिन्न तरह के तरीकों का इस्तेमाल शुरू हुआ ; जैसाकि उन्होंने लिखा— सत्तर के दशक तक दूरदर्शन इस विकासवादी लाइन पर चलता रहा। मगर एशियाड के प्रसारण और टेलीविजन के रंगीन हो जाने के साथ ही 1982 से बहुत कुछ बदलना शुरू हो गया। यह वही समय था जब दूरदर्शन का जादू पूरे मुल्क को अपनी गिरफ्त में लेने लगा था। सरकार ने इसका इस्तेमाल अपनी सत्ता और विचारधारा के हक में ढिठाई से करना शुरू कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि दूरदर्शन सरकार के राजनीतिक स्वार्थों का साधन बनता चला गया।[4]

जवरीमल्ल पारख ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि शांति के समर्थक की तस्वीर खींचना टेलीविजन की कोशिश रही है। मीडिया समाज के हर स्तर को संदेश देना चाहता है। उन्होंने लिखा है— अपना माल बेचने के लिए आज की विश्व राजनीति के अत्यन्त जटिल राजनीतिक टकराव का इस्तेमाल करना है। लेकिन इस सावधानी के साथ कि किसी भी पक्ष का

3 राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 89

4 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 161

समर्थन किये बिना इस संदेश को कहा जाए ताकि दर्शकों के बीच किसी तरह के राजनीतिक पूर्वग्रह के बिना शांति के समर्थक की तस्वीर बने।[5] प्रमुख घटनाओं को प्रमुखता से परोसने का महत्व होता है।

इस ओर दिलीप मण्डल ने ठीक ही लिखा है—मीडिया या मीडिया का बड़ा या प्रभावशाली अंश अगर किसी मुद्दे से संबंधित घटनाओं को लगातार पहले पन्ने पर या प्रमुख शीर्षक के रूप में दिखाये, तो इस बात की काफी संभावना है कि लोग उस मुद्दे को महत्वपूर्ण मानने लगेंगे।[6]

जवरीमल्ल पारख के अनुसार सिर्फ छापने से बात नहीं बनती है बल्कि भाषा सशक्त हो, जैसाकि उन्होंने लिखा है— मीडिया में भाषा का सचेत प्रयोग करना होता है और वह माध्यम, उद्देश्य, अंतर्वस्तु, लक्ष्य समूह आदि कई बातों से तय होता है। भाषा का सचेत प्रयोग शब्दों के चयन, वाक्य विन्यास, शैली और संरचना में व्यक्त होता है।[7] डॉ. एस. के. दुबे ने लिखा है कि मीडिया घटना का साक्षी बनता है। वह उसमें लिप्त नहीं होता है। उनके अनुसार, मीडिया की यह जिम्मेदारी है कि वह सत्य का सम्मान करे और आमजन में सत्य के प्रति निष्ठा पैदा करे। सूचना प्राप्त करने के अधिकार में निहित है स्वतंत्र

5 पारख जवरीमल्ल, जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ. 128

6 मण्डल दिलीप, मीडिया का अंडरवर्ल्ड, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2011, पृ. 20

7 पारख जवरीमल्ल, जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ. 131

Scanned with CamScanner

विचार रखने का अधिकार। मीडिया का कार्य घटनाओं का साक्षी बनना है न कि उन्हीं में लिप्त होना।[8]

विष्णु राजगढ़िया ने मीडिया की आजादी का सवाल उठाते हुए राजनीतिक व्यवस्था को एक तरह से दुरुस्त करने की बात कही है, ताकि मीडिया सही ढंग से काम कर सके। उनके अनुसार, मीडिया को समाज में स्वतंत्र तौर पर काम करने का अवसर चाहिए तथा उसे कितनी स्वतंत्रता मिलेगी, यह तय करना राजनीतिक व्यवस्था का काम है। राजनीतिक व्यवस्था ही मीडिया से जुड़े व्यवसाय के टैक्सों, कागज के दाम, अन्य सभी चीजों के दाम, टैक्स, नियम वगैरह का भी निर्धारण करती है।[9]

डॉ. श्याम कश्यप का मानना है कि आज व्यावसायिक सफलता सबसे बड़ी कसौटी है। इसी कसौटी पर मीडिया को खरा उतरना लाजिमी है : ...दूरदर्शन की मुख्यधारा उसके ठीक विपरीत काम कर रही थी। निजी कम्पनियां सफलता के लिए तमाम नुस्खे आजमा रही थीं और मुनाफा बढ़ाने के एजेण्डे पर काम कर रहे दूरदर्शन ने आंखें बन्द कर ली थीं। उसके लिए व्यावसायिक सफलता सबसे बड़ी कसौटी बन चुकी थी। नतीजा यह हुआ कि दिनोंदिन उसके कार्यक्रम ऐसी लीक पकड़ने लगे, जिन्हें विकास-

8 दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 150

9 राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 90

विरोधी कहना ज्यादा ठीक होगा।[10] विष्णु राजगढ़िया ने लिखा है—...टीवी पर आनेवाले पात्रों में कानून-व्यवस्था संबंधी सेवाओं से जुड़े लोगों की संख्या ज्यादा होने के कारण ऐसे दर्शकों ने वास्तविकता के बजाय टेलीविजन पर दिखाये गये कार्यक्रमों के अनुरूप अपनी धारणा बना ली। शोध के अनुसार ज्यादा टीवी देखनेवालों के अंदर असुरक्षा-बोध ज्यादा पाया गया।[11]

डॉ. श्याम कश्यप ने 'टेलीविजन की कहानी' पुस्तक में उल्लेख किया है—यह वही दौर था जिसे 'दूरदर्शन का स्वर्णिम युग' कहा जाता है। इसी दौरान 'हम लोग' और 'बुनियाद' जैसे सोप ओपेरा बने, 'रामायण', 'महाभारत', 'भारत : एक खोज' और 'तमस' जैसे धारावाहिकों ने धूम मचायी। साहित्यिक कृतियों पर ढेर सारे धारावाहिक बने। सत्यजीत रे, श्याम बेनेगल और गोविन्द निहलानी-जैसे गंभीर और अच्छे फिल्मकार दूरदर्शन से जुड़े। स्तरीय समसामयिक कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। 'द वर्ल्ड दिस वीक', 'जनवाणी', 'न्यूज लाइन', 'परख' आदि इसी दौर के कार्यक्रम थे, जिन्हें असाधारण लोकप्रियता हासिल हुई।[12]

जवरीमल्ल पारख ने अपनी पुस्तक 'जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श' में बताया है—मीडिया के क्षेत्र में अंग्रेजी का जो वर्चस्व अफ्रीका और

10 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार, मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 165

11 राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 92

12 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार, मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 162

Scanned with CamScanner

लेटिन अमरीका के देशों में दिखायी देता है वैसा वर्चस्व भारत में नहीं दिखायी देता। शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान से संबंधित उच्चतर क्षेत्रों में निश्चय ही अंग्रेजी का वर्चस्व दिखायी देता है लेकिन संस्कृति के लोकप्रिय क्षेत्रों में जिसे मनोरंजन उद्योग का स्रोत भी माना गया है अंग्रेजी अपनी बहुत जगह नहीं बना पायी है।[13]

दिलीप मण्डल ने 'मीडिया का अण्डरवर्ल्ड' में तुर्की में आयोजित एक सम्मेलन के हवाले से उद्धृत किया है कि समाज में दायित्वशील भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। घोषणा का अंश—प्रेस की स्वतंत्रता का मतलब सिर्फ पत्रकारों, सम्पादकों या मीडिया मालिकों की स्वतंत्रता नहीं है। बल्कि यह सभी नागरिकों का लोकहित के विषयों पर सब कुछ जानने का अधिकार है। स्वतंत्र प्रेस का यह भी मतलब है कि वह इस अधिकार का इस्तेमाल जिम्मेदारी के साथ करेगा। प्रेस को सरकार के प्रति नहीं बल्कि जनता के प्रति जवाबदेह होना चाहिए।[14] डॉ. श्याम कश्यप का कहना है—अच्छे निर्माता मंडी हाउस से बाहर होने लगे, क्योंकि उनमें अपने कार्यक्रमों को बेचने की क्षमता नहीं थी। मंडी हाउस की नीति यह बनने लगी थी कि कार्यक्रम के 'पायलट' के आधार पर हम उसे बनाने की मंजूरी तो दे देंगे, मगर आपको प्रायोजक खुद ढूंढ़ने पड़ेंगे। दूरदर्शन उसे 'कमीशन' नहीं करेगा। ...यह तो

13 पारख जवरीमल्ल, जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ.134

14 मण्डल दिलीप, मीडिया का अंडरवर्ल्ड, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2011, पृ. 21

ज्यादातर अच्छे निर्माताओं के बूते से बाहर की बात थी, क्योंकि मार्केटिंग के गुर उन्हें नहीं आते थे, जबकि धंधेबाजों को ये माफिक बैठते थे।[15]

विष्णु राजगढ़िया ने लिखा है— ...मास मीडिया का काम प्रभुत्ववाले मत को बढ़ावा देना और अल्पमत को खत्म करने का होता है। हालांकि कुछ विद्वानों ने इस सच को मानते हुए इस बात पर भी जोर दिया है कि अल्पमत के लोग भी किसी-न-किसी रूप में अपना पक्ष प्रस्तुत करते ही हैं, भले ही मास मीडिया में उसे जगह मिले अथवा न मिले।[16]

जवरीमल्ल पारख ने मीडिया के भीतर जनतंत्र स्थापित करने का सवाल उठाते हुए लिखा है— मीडिया के लिए भी लोकतांत्रिक व्यवहार जरूरी है। कई बार यह भी देखा जाता है कि जो अखबार या चैनल सरकार की आलोचना में बहुत तीखा है और सरकार के अलोकतांत्रिक व्यवहार की लगातार तीव्र शब्दों में भर्त्सना करता रहता है स्वयं अपने कर्मचारियों के प्रति न सिर्फ अलोकतांत्रिक होता है बल्कि उनके अधिकारों के हनन का दोषी भी होता है।[17] दिलीप मण्डल ने लिखा है— मीडिया और समाज को लेकर सैद्धांतिकी की बात करें तो वर्तमान मीडिया परिदृश्य में यह सवाल महत्वपूर्ण

15 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 163

16 राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 95

17 पारख जवरीमल्ल, जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ. 218

Scanned with CamScanner

हो जाता है कि मीडिया की वर्तमान प्रवृत्तियां देश और समाज में आ रहे बदलाव का कारण हैं या परिणाम।[18]

डॉ. एस. के. दुबे ने एक अलग दृष्टि से विचार करते हुए लिखा है—जीवन में आशा और विश्वास का संचार करना मीडिया का दायित्व है। हमारी वैदिक प्रार्थना है कि हमारे पास विश्व की सभी दिशाओं से शुभ विचार अबाध रूप से आयें और कुविचारों का नाश हो।[19]

डॉ. श्याम कश्यप का कहना है—दूरदर्शन पर निजी निर्माताओं के लिए दिशा-निर्देश बनाने के लिए देवधर कमेटी का गठन किया गया था। इसके अध्यक्ष पी. एस. देवधर थे, जबकि निखिल चक्रवर्ती, हबीब तनवीर, मृणाल पाण्डे-जैसे लोगों को सदस्य बनाया गया। इसे मुख्य रूप से यह बताने की जिम्मेदारी सौंपी गयी कि मनोरंजन चैनल की सामग्री किस तरह की होनी चाहिए।[20]

डॉ. एस. के. दुबे ने लिखा है—मीडिया में शक्ति है, किन्तु यह उसे जनसमर्थन से ही प्राप्त होती है। अतएव जनसमर्थन के लिए जनमानस की पहचान आवश्यक है। समाचारों, सूचनाओं का सम्यक विश्लेषण करके मीडिया को आमजन को आत्म-निर्णय करने के लिए प्रोत्साहित करना होता

18 मण्डल दिलीप, मीडिया का अंडरवर्ल्ड, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2011, पृ. 21

19 दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 152

20 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 164

है।[21] कभी-कभी इसके अंतर्गत तकनीकी मध्यस्थता भी प्रमुख हो जाती है। इस ओर ध्यान खींचते हुए जेम्स करन ने लिखा है— संचार साधनों की नयी तकनीकों के प्रवेश से स्थापित मध्यस्थता समूहों और संगठनों की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचा है। इस नये मीडिया ने संचार के नये माध्यम प्रदान कर और मीडिया के स्थापित अभिकरणों की अपेक्षा कर सामाजिक ज्ञान के वर्गीकृत नियंत्रण के सामने खतरे उत्पन्न कर दिये हैं।[22]

डॉ. श्याम कश्यप और मुकेश कुमार ने संयुक्त रूप से यह दावा किया है कि निजीकरण की इस हवा का प्रभाव विज्ञापनों में दिखा। कार्यक्रमों के प्रायोजक के तौर पर या दूसरे रूपों में, विज्ञापनों ने ऐसे संदेश देने शुरू किये जो कि दूरदर्शन की मूल धारणा के निश्चित ही विपरीत थे। इन विज्ञापनों का समाजशास्त्र अलग था और ये दूसरी तरह के आर्थिक मनोविज्ञान पर काम करते थे।[23]

विष्णु राजगढ़िया ने लिखा है—मीडिया में समय-समय पर कुछ मुद्दे विशेष प्रभाव रखते हैं। ऐसे मुद्दे व्यक्ति, समाज तथा राजनीतिज्ञों के भी प्रमुख मुद्दे होते हैं। इसमें प्राय: मीडिया यह तय करता है कि किसी समय, स्थान एवं स्थिति विशेष में कौन-से मुद्दे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं और कौन-से मुद्दे

21 दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 151

22 करन जेम्स, संचार, सत्ता और समाज व्यवस्था, संचार माध्यम और पूंजीवादी समाज (सं.) मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, (अनु.) ओमप्रकाश मालवीय, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2006, पृ. 139-140

23 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 166

Scanned with CamScanner

होता है। इस तरह मीडिया जनमत के ऊपर एक खास किस्म का प्रभाव छोड़ता है। लोगों को पूरी का पता मीडिया के द्वारा ही चलता है।[24] डॉ. एस. के. दुबे ने इस आर्थिक पत्रकारिता के सम्बन्ध में अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है—मीडिया को तथ्यों और वस्तुपरक विश्लेषणों के माध्यम से सत्य उजागर करना होता है, किन्तु याद रहे सत्य कभी-कभी या बहुधा कड़वा होता है और सभी में सत्य का सामना करने की क्षमता नहीं होती। व्यस्त स्वार्थ पर जब मीडिया हमला करती है तो जिन्हें चोट लगती है, वे तिलमिलाते हैं।[25]

विष्णु राजगढ़िया ने कहा है— ...समाज में मानक-मूल्यों के अभाव के कारण व्यक्ति यह महसूस करता है कि उसके व्यवहार पर नियंत्रण के लिए कोई सामाजिक नियम नहीं हैं। दार्शनिक दुर्खीम के अनुसार मानक-विहीनता की इस स्थिति में मनुष्य यह समझता है कि उससे जुड़े मूल्यों एवं नियमों में विभिन्न प्रकार की असंगतियाँ हैं।[26] डॉ. एस. के. दुबे ने लिखा है—जन सम्पर्क का एक और कार्य है। यह विभाग ऐसे संदेशों की संरचना समाचार या सम्पादकीय के रूप में करता है, जो वास्तव में भुगतान करके अखबारों-मैगजीनों में विज्ञापन की तरह छपवाये जाते हैं। किन्तु देखने में वे विज्ञापन नहीं लगते। यह पाठकों को भ्रम में डालने के लिए किया जाता है।[27]

[24] राजगढ़िया विष्णु. जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग. राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. नयी दिल्ली. 2008. पृ. 97

[25] दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम. लोकभारती प्रकाशन. इलाहाबाद. 2006. पृ. 151

[26] राजगढ़िया विष्णु. जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग. राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. नयी दिल्ली. 2008. पृ. 109

[27] दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम. लोकभारती प्रकाशन. इलाहाबाद. 2006. पृ. 155

विष्णु राजगढ़िया ने दूसरे पक्ष पर विचार करते हुए लिखा है— ...मीडिया वस्तुतः सामाजिक नियंत्रण एवं मैनीपुलेशन का उपकरण है। उसका काम जनता को शासकवर्ग के विचारों के प्रति आस्थावान बनाना व प्रेरित करना है। इसके लिए मीडिया मुख्यतया सत्ताधारी वर्ग के ही प्रतीकों, व्यक्तित्वों को उभारता है तथा उसकी एक आकर्षक छवि निर्मित करता है।[28]

जवरीमल्ल पारख ने अपनी पुस्तक 'जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श' में उल्लेख किया है— ...भूमण्डलीकरण के दौर में पेश किया जा रहा है : सोचो वैश्विक, करो स्थानीय। मीडिया में भाषा के प्रयोग को भूमण्डलीकरण के प्रभाव के संदर्भ में विश्लेषित करना इसीलिए जरूरी है।[29] विष्णु राजगढ़िया ने 'जनसंचार सिद्धांत और अनुप्रयोग' नामक पुस्तक में लिखा है— जनसंचार में ओपिनियन लीडर की भूमिका संबंधी अध्ययनों से भी यही बात सामने आती है कि महज मीडिया के माध्यम से किसी विषय पर पर्याप्त प्रभाव नहीं छोड़ा जा सकता, बल्कि कई चीजें मिलकर ही इस प्रक्रिया को पूरा कर सकती हैं।[30]

जवरीमल्ल पारख ने उल्लेख किया है कि भाषा की खोज मनुष्य ने अपने ज्ञान को दूसरों तक सम्प्रेषित करने के लिए ही की है, और इस रूप में ज्ञान भाषा के बिना केवल अपना अस्तित्व नहीं रख पाता बल्कि वह दूसरों तक

[28] राजगढ़िया विष्णु. जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग. राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. नयी दिल्ली. 2008. पृ. 110

[29] पारख जवरीमल्ल. जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श. पंच शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड. दिल्ली. पृ. 139

[30] राजगढ़िया विष्णु. जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग. राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. नयी दिल्ली. 2008. पृ. 113

Scanned with CamScanner

सम्प्रेषित भी नहीं हो सकता। इस प्रकार सीखने की प्रक्रिया जब अनुकरण से आगे बढ़ती है और उसमें नवीनता और मौलिकता का समावेश होने लगता है तो भाषा उसका माध्यम बन जाती है।[31]

डॉ. श्याम कश्यप और मुकेश कुमार ने लिखा है कि समसामयिक विषयों के इक्का-दुक्का कार्यक्रम निजी निर्माता बनाते जरूर थे, मगर उन पर दूरदर्शन का ही नियंत्रण था, क्योंकि वे प्रायोजित नहीं, 'कमीशंड' श्रेणी के तहत थे। इन कार्यक्रमों को प्रसारण के पहले अधिकारी देखते थे और अपनी समझ के हिसाब से कैंची चलाते थे। हालांकि इस अघोषित सेंसरशिप का मुख्य उद्देश्य सत्तारूढ़ दल की आवश्यकताओं को पूरा करना ही था, मगर फिर भी एक निगरानी तो रहती ही थी।[32]

डॉ. एस. के. दुबे ने कहा है— जन सम्पर्क कर्मी आंतरिक एवं बाह्य वातावरण से सूचना एकत्र करता है। वह इस कार्य को वातावरण की अपनी समझ और आमजन के सम्पर्क से उत्पन्न समझ के माध्यम से करता है और उसे आंतरिक संस्था कर्मियों के स्वभाव, व्यवहार और सोच से परिचित रहना होता है।[33]

'टेलीविजन की कहानी' पुस्तक में डॉ. श्याम कश्यप ने लिखा है कि दूरदर्शन चूंकि मुनाफा चाहता था, इसलिए बाज़ार की मांगों के हिसाब से उसे

31 पारख जवरीमल्ल, जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ. 140
32 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 166
33 दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 156

निजी निर्माताओं को रियायतें देने के लिए मजबूर होना पड़ा। निजी निर्माताओं के न्यूज बुलेटिन तेजी से लोकप्रिय होते चले गये, क्योंकि वे दूरदर्शन की खबरों के मुकाबले में आकर्षक तो थे ही! उनमें गति थी, प्रस्तुति का ढंग अलग था और एक खास तरह की आक्रामकता भी थी।[34]

विष्णु राजगढ़िया ने लिखा है— जनसंचार-माध्यमों में हिंसा व अपराधों की अत्यधिक प्रस्तुति को समाज के लिए घातक बतानेवालों की कमी नहीं। दूसरी ओर, यह तर्क भी दिया जाता है कि हिंसा देखनेवाला हर दर्शक हिंसक नहीं हो जाता।[35] 'पत्रकारिता के नये आयाम' पुस्तक में डॉ. एस. के. दुबे ने लिखा है— प्रचार क्षेत्र में भी रोजगार के अवसर हैं। आजकल व्यापार, राजनीति और समाज सेवा सभी में प्रचार की आवश्यकता है। इसमें लेखक, कलाकार, व्याख्यानदाता, साहित्यकार सभी के जीविकोपार्जन के अवसर हैं, जो कला का प्रयोग मात्र कला के लिए ही नहीं, बल्कि जीविका के लिए भी कर सकते हैं।[36]

दिलीप मण्डल ने 'मीडिया का अंडरवर्ल्ड' में बताया है— मीडिया और समाज को लेकर प्रचलित कई परम्परागत सिद्धांत भी स्थितियों को समझने में मदद करते हैं। मिसाल के तौर पर, मीडिया के बारे में सी. राइट मिल्स और कई अन्य लेखकों ने यह माना कि सत्ता का इस्तेमाल करने वाली

34 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार मुकेश, टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 167
35 राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 114
36 दुबे डॉ. एस. के., पत्रकारिता के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 157

Scanned with CamScanner

संस्थाएं एक-दूसरे से गुंथी हुई होती हैं और इस नाते उन्होंने मीडिया को भी सामाजिक सत्ता और अधिकार के स्रोत के तौर पर देखा।[37]

जवरीमल्ल पारख ने ठीक ही कहा है : भाषा में लयात्मकता लाने की कोशिश इसी जरूरत का नतीजा है जो बात को लम्बे समय तक स्मरण रखने में मददगार होती है। भाषा सिर्फ ज्ञान को ही सम्प्रेषित नहीं करती उस ज्ञान को प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने का माध्यम भी बनती है। प्रभाव पैदा करने की यह शक्ति भाषा में सौन्दर्य की सृष्टि करती है जो सम्प्रेषण का गुण बन जाती है।[38]

विष्णु राजगढ़िया ने कहा है— ...मीडिया को समाज का प्रतिबिम्ब कहा जाता है तथा इस अर्थ में मीडिया वस्तुतः समाज पर कोई प्रभाव नहीं डालता बल्कि वह सिर्फ समाज का वास्तविक रूप प्रस्तुत दिखा रहा होता है। इसलिए मीडिया पर यह नाहक इल्जाम है कि वह नकारात्मक चीजों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा है।[39] जवरीमल्ल पारख ने संदेश पहुंचाने में भाषा सहित अन्य ध्वनियों के महत्व के सम्बन्ध में लिखा है—संदेश पहुंचाने के लिए भाषा का इस्तेमाल हजारों साल पुराना है। लेकिन संदेश के लिए भाषा के अलावा भी कई रूपों का इस्तेमाल होता रहा है। इनमें ऐसी ध्वनियों का

37 मण्डल दिलीप, मीडिया का अंडरवर्ल्ड, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2011, पृ. 22

38 पारख जवरीमल्ल, जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ. 141

39 राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 114

उपयोग भी शामिल है जो भाषा में इस्तेमाल होने वाली ध्वनियों से भिन्न हो सकती हैं।[40]

लेकिन इसके बावजूद शासन से अनुमति लेनी पड़ती है। इस ओर विष्णु राजगढ़िया ने कहा है : शासन विरोधी सामग्री पर पूर्ण सेंसर लगाते हुए ऐसे प्रावधान रखे गये कि किसी भी वक्त लाइसेंस रद्द किया जा सके। प्रकाशन से पूर्व धार्मिक प्राधिकारी से अनुमति लेनी पड़ती थी। प्रिंटिंग की अनुमति के लिए शुल्क लेने के साथ ही तरह-तरह के बॉन्ड भराये जाते थे।[41]

दिलीप मण्डल ने एक तरह से बाजारवाद के चलते उत्पन्न हो रही पेड न्यूज के सम्बन्ध में ध्यान केन्द्रित किया है—...भारतीय मीडिया के बहुचर्चित विषय पेड न्यूज की पश्चिम में कोई समानान्तर परम्परा नहीं है। चुनाव खर्च पर कोई सीमा न होने के कारण कई देशों में पेड न्यूज उस शक्ल में नहीं दिखता, जिसे लेकर भारतीय लोकतंत्र में गहरी चिंता है। नेताओं और राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव के दौरान मीडिया में स्पेस खरीदने को कई देशों में नीति विरुद्ध नहीं माना जाता है। बल्कि कई देशों में घोषित तौर पर राजनीतिक दल टेलीविजन पर समय खरीदते हैं।[42]

40 पारख जवरीमल्ल, जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ. 165

41 राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 116

42 मण्डल दिलीप, मीडिया का अंडरवर्ल्ड, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2011, पृ. 23

Scanned with CamScanner

डॉ. श्याम कश्यप ने बाजार के दर्शन पर बल देते हुए लिखा है—बाज़ारवाद के समर्थक कह सकते हैं कि दूरदर्शन की एक ऐतिहासिक भूमिका थी, जो उसने पूरी कर दी। उसने टेलीविजन इण्डस्ट्री को फलने-फूलने के लिए एक आधार और एक बाज़ार मुहैया करवा दिया था। इसके बाद अब उसकी जरूरत नहीं रह गयी थी। उसकी उपयोगिता खत्म हो गयी थी, क्योंकि अब समय बाज़ार का आ गया था। यहां वही टिक सकता था, जो कि बाजार के दर्शन को माने और उसके हिसाब से चलने को तैयार हो।[43] विष्णु राजगढ़िया ने कहा है—मीडिया पर अपने नियंत्रण के लिए निरंकुश सत्ता तरह-तरह के लाइसेंस, सेंसर वगैरह के प्रावधान करती है। उनके उल्लंघन की अवस्था में कड़े आर्थिक व शारीरिक दण्ड, प्रेस जब्ती, जेल, यहां तक कि मृत्युदण्ड की सजा सुनाती है।[44]

संदेश को पूर्ण बनाने के सम्बन्ध में जवरीमल्ल पारख ने कहा है—भाषा, अभिनय, ध्वनि, चित्र, आवाज आदि का प्रयोग संदेश सम्प्रेषित करने के लिए आज भी किया जाता है। कह सकते हैं कि इनके बिना अब भी कोई संदेश संभव नहीं है। बस, इनको वहन करने वाले या इनको अभिव्यक्त करने वाले माध्यम बदल गये हैं। इनके इसी महत्व के कारण इनको माध्यम के साथ-साथ भाषा भी कहा जाता है।[45]

43 कश्यप डॉ. श्याम, कुमार मुकेश, *टेलीविजन की कहानी*, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 168

44 राजगढ़िया विष्णु, *जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग*, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ.117

45 पारख जवरीमल्ल, *जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श*, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ. 166

विष्णु राजगढ़िया ने लिखा है— ...मीडिया वस्तुतः श्रोता का उत्पादन करता है। स्मिथ (1977) के अनुसार मीडिया श्रोताओं का ध्यान विज्ञापन की ओर आकर्षित करता है और लोगों के व्यवहार को एक खास दिशा में ले जाकर उन्हें एक माल के रूप में बदल देता है।[46] डॉ. एस. के. दुबे ने लिखा है— भारत में मीडिया शक्तिशाली आर्थिक और राजनैतिक हितों की बंदिश में है। सरकारी मीडिया प्रबंधन के चंगुल में फंसने और सरकारी तथा राजनीतिक हितों को सच के रूप में प्रचारित करने के कारण आज मीडिया की विश्वसनीयता की साख गिरती जा रही है।[47]

विष्णु राजगढ़िया ने सामाजिक उत्तरदायित्व के बारे में लिखा है— ...प्रेस की स्वतंत्रता सामाजिक उत्तरदायित्व के अंतर्गत निहित है। मीडिया को विभिन्न तथ्यों को सामाजिक उत्तरदायित्व एवं सार्थक परिदृश्य के तहत सत्य रूप में पेश करना चाहिए। इसने एक नियमावली व्यवस्था लागू करने का सुझाव दिया जो प्रेस के क्रियाकलाप पर दृष्टि रखे।[48] डॉ. एस. के. दुबे ने भूमण्डलीकरण के युग में जनसम्पर्क के सम्बन्ध में लिखा है— ...इस भूमण्डलीकरण के युग में जन सम्पर्क कार्य और अधिक वृहद और जटिल हो रहा है। जन सम्पर्क कर्म में शामिल है निवेशकों के साथ संबंध, असंभावित

46 राजगढ़िया विष्णु, *जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग*, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 122

47 दुबे डॉ. एस. के., *पत्रकारिता के नये आयाम*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 158

48 राजगढ़िया विष्णु, *जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग*, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 123

Scanned with CamScanner

स्थितियों का प्रबंधन, कम्पनियों की छवि, जन समस्याएं, कम्पनियों के उद्देश्य।[49]

डॉ. श्याम कश्यप और मुकेश कुमार ने ठीक कहा है कि निजीकरण की राह पर चलकर दूरदर्शन ने गंवाया ही गंवाया है, कमाया कुछ भी नहीं! उसकी साख गयी। पर-निर्भरता की वजह से उसका विकास अवरुद्ध हुआ। एक 'पब्लिक ब्राडकास्टर' के तौर पर उसने अपनी भूमिका के साथ भी न्याय नहीं किया। वह अपने उद्देश्यों से हट गया, लक्ष्यों से भटक गया। और तो और, अब चैनलों के बाजार में भी वह कहीं नहीं खड़ा है। दूरदर्शन की नींव रखनेवाले और प्रारम्भिक दौर में उसे देश के विकास का औज़ार समझने वाले आज की ऐसी हालत देखकर निश्चय ही दुखी हो रहे होंगे।[50] ऐसी स्थिति तभी उत्पन्न होती है, जब अभिव्यक्ति की दुनिया में चौथे खम्भे को यथार्थपरक ऊर्जा नहीं दी जाती है। अभिव्यक्ति के सारे खतरों को उठाये बिना चौथे खम्भे की अग्रगति असंभव है। इस असंभव को संभव बनाना मानव सभ्यता की पहचान रही है।

[49] दुबे डॉ. एस. के., *पत्रकारिता के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 160*

[50] कश्यप डॉ. श्याम, कुमार, मुकेश, *टेलीविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, 2008, पृ. 169*

चौथे खम्भे की चुनौतियां

मीडिया के सामने भयानक चुनौतियां हैं। उसे भी मंदी की मार झेलनी पड़ रही है। कारपोरेट क्षेत्रों को लाखों-लाख डालर पैकेज देने के बावजूद उन्हें मंदी के प्रभाव से बचाया नहीं जा रहा है। दुनिया के जाने-माने विशेषज्ञों को यही विश्वास है कि निवेश के जरिये ही इस मंदी से निपटारा मिल सकता है। लेकिन इस दवा से मंदी का उपचार संभव नहीं है।

जिन विकसित देशों ने कभी सोचा भी नहीं था कि मंदी की मार भी कुछ होती है, आज उनकी दुर्दशाएं भी सर्वविदित हैं। वैसे, उनकी स्थिति निश्चित तौर पर विकासमान देशों की अपेक्षा बेहतर है। उन देशों में भी मीडिया का मानवीय चेहरा उस रूप में उभरकर सामने नहीं आ रहा है, जिस रूप में उसका स्वरूप सामने आना चाहिए। बदलती स्थिति में खासकर नव उदारीकरण नीति के चलते मीडिया का विश्वव्यापी मानवीय चेहरा स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। इस नीति के कारण दुनिया में मंदी छा गयी है। इस मंदी की मार ने मानवीय चेहरे को भयानक चोट पहुंचायी है।

हर क्षेत्र में मीडिया की पहुंच बनी है। यदि इस पहुंच में कहीं कुछ गायब हो गया है, तो वह उसका मानवीय रूप है। इस रूप के बिना किसी

Scanned with CamScanner